विशेषांक

UPBIL 04831

मूल्य ₹100

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

संस्कृति पर्व

sanskritiparva

आज़ादी का अमृत महोत्सव

संस्कृति संसद 2021

चर्चा संस्कृति की, चिंतन राष्ट्र का

विदेश के लिए मूल्य : $10

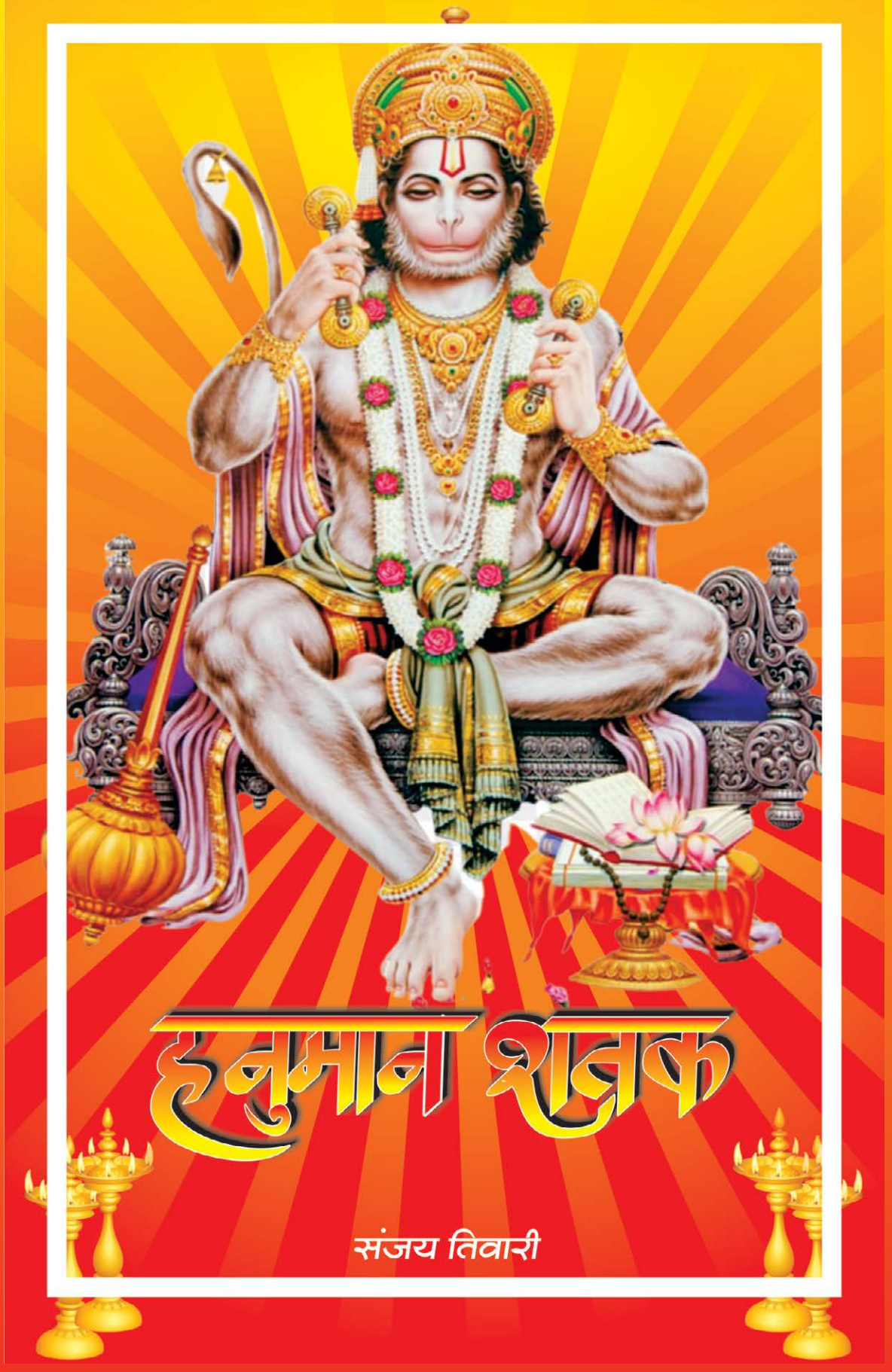
हनुमान शतक
संजय तिवारी

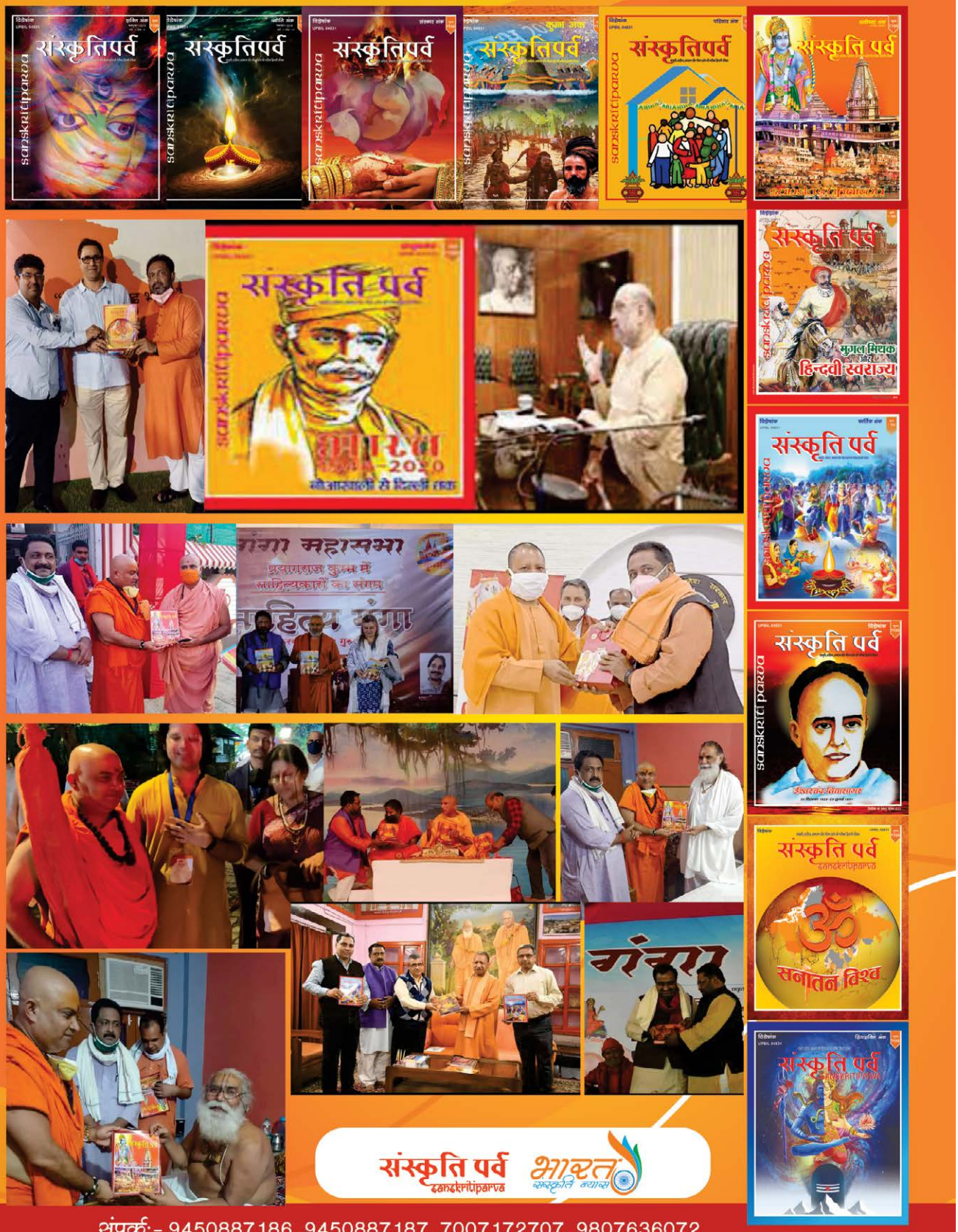

संपर्कः- 9450887186, 9450887187, 7007172707, 9807636072
email- editor.sanskritiparva@gmail.com

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	नयी काशी मानव कल्याण के लिए सनातन के पुनरुद्धार का जयघोष	प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय	24
02	Advaita Vendanta A path of universal peace and happiness	Prof. Sabhajeet Mishra	30
03	'ऊं नूतन जलधर रुच, गोप वधूतूलचौराय नमो, तस्मै श्री कृष्णाय'	प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल	36
04	बृहदारण्यकोपनिषद् में उपलब्ध वंश-परम्पराएँ	प्रो. मुरली मनोहर पाठक	40
05	जय-विजय के बीच हम सबके राम	प्रो. संजय द्विवेदी	44
06	सनातन संस्कृति और विश्वास की मूल	प्रो. हिमांशु चतर्वेदी	48
07	शताब्दी वर्ष की ओर अग्रसर सनातन यात्रा	संजय तिवारी	52
08	वसिष्ठ और विश्वामित्र नामों का ज्ञानरहस्य	स्वामी राजेश्वराचार्य	56
09	सशक्त मातृत्व, समर्थ भारत	डा. अर्चना तिवारी	58
10	सृष्टि के नाथ बाबा विश्वनाथ	कैप्टन सुभाष ओझा	62
11	मानव सेवा, माधव सेवा, सनातन धर्म, मानव धर्म	डॉ. नीता चौबीसा	64
12	सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति	स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती	68
13	विश्व मे मानवता की मूल सनातन संस्कृति	शिव प्रताप शुक्ल	76
14	सनातन हिन्दू संस्कृति का सार तत्व सहेजती एक पुस्तक	डॉ मुन्ना तिवारी0	90

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

– सम्पादक

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

संस्कृति पर्व
sanskritiparva

संस्कृति संसद – अंक
वर्ष-4 अंक-8 नवम्बर - 2021

सनातन प्रकाश पुंज

जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी

(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)

जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (श्री अयोध्या जी)

स्वामी राजकुमार दासजी (श्री अयोध्या जी)

संरक्षक

संजय राय शेरपुरिया

विद्वत परिषद

प्रो० सभाजीत मिश्र – (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो०वि०वि०)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी – (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
प्रो० संजय द्विवेदी – (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
डॉ० लालता प्रसाद मिश्र – (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
ए. पी. मिश्र –(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
अमरनाथ सिंह –(समाजसेवी एवं आध्यात्मिक चिंतक)
प्रो० विनय कुमार पाण्डेय –(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का० हि० वि० वि०)
प्रो० रामदेव शुक्ल – (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी – (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय – (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त – (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
श्री मनोजकांत – (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी – (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे – (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद –(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय)
श्री प्रफुल्ल केतकर – (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
डॉ मृणालिनी चतुर्वेदी – (अध्यक्ष क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय – (सम्पादक,जनता टीवी, उ. प्र.)
डॉ० देवर्षि शर्मा – (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
डॉ० प्रदीप राव – (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी – (इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह – (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो०वि०वि०)
श्री आर एल पाण्डेय – (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
डॉ० नरेश अग्रवाल – (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव – (अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०)
राकेश त्रिपाठी – (आई० आर० एस०)
भास्कर दूबे – (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
डॉ० योगेश मिश्र – (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)
डॉ.दिनेश मणि त्रिपाठी – (सदस्य उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा परिषद)

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह, (नई दिल्ली)
विशिष्ट सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)
सदस्य
श्री अजय उपाध्याय (वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी (बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
दयानंद पाण्डेय (लेखक एवं पत्रकार)
डॉ पुनीत विसारिया
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि. वि., झांसी
डॉ० ममता त्रिपाठी (दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ. मिथिलेश तिवारी (संगीतज्ञ, गोरखपुर)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
श्री हेमंत मिश्र (निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही (निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर०सी० मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री मारकण्डेयमणि त्रिपाठी
(अध्यक्ष, प्रेस क्लब, गोरखपुर)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
डॉ० रविकांत तिवारी(अमेरिका)
डॉ० राम शर्मा(शिक्षाविद्, मेरठ)
दिवाकर शर्मा(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
आमोदकांत मिश्र (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

प्रधान सम्पादक
श्री हनुमानजी महाराज

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)
समूह सम्पादक
प्रो० राकेश कुमार उपाध्याय
अतिथि सम्पादक
स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती
प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र
सम्पादक
संजय तिवारी
कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी
संपादक विचार
दुर्गेश उपाध्याय
सहायक सम्पादक
डॉ० अनिता अग्रवाल (हिन्दी)
डॉ० राजीव तिवारी (अंग्रेजी)
समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह
सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हितेश व्यास
माधवी व्यास
सह सम्पादक
गोविन्द शर्मा
कमलेश कमल
विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)
केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय
विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
कैप्टन सुभाष ओझा
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)
लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता
लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव
सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी
क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St| Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)
Mail us: editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

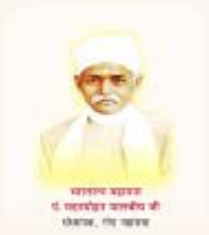

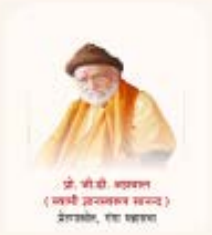

अखिल भारतीय संत समिति एवं श्रीकाशी विद्वत् परिषद्

के मार्गदर्शन में

गंगा महासभा

Registration link

द्वारा आयोजित

संस्कृति संसद

चर्चा संस्कृति की, चिंतन राष्ट्र का

2021

12, 13 एवं 14 नवंबर 2021

रुद्राक्ष अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सम्मेलन केंद्र, वाराणसी Designated

आज़ादी का अमृत महोत्सव

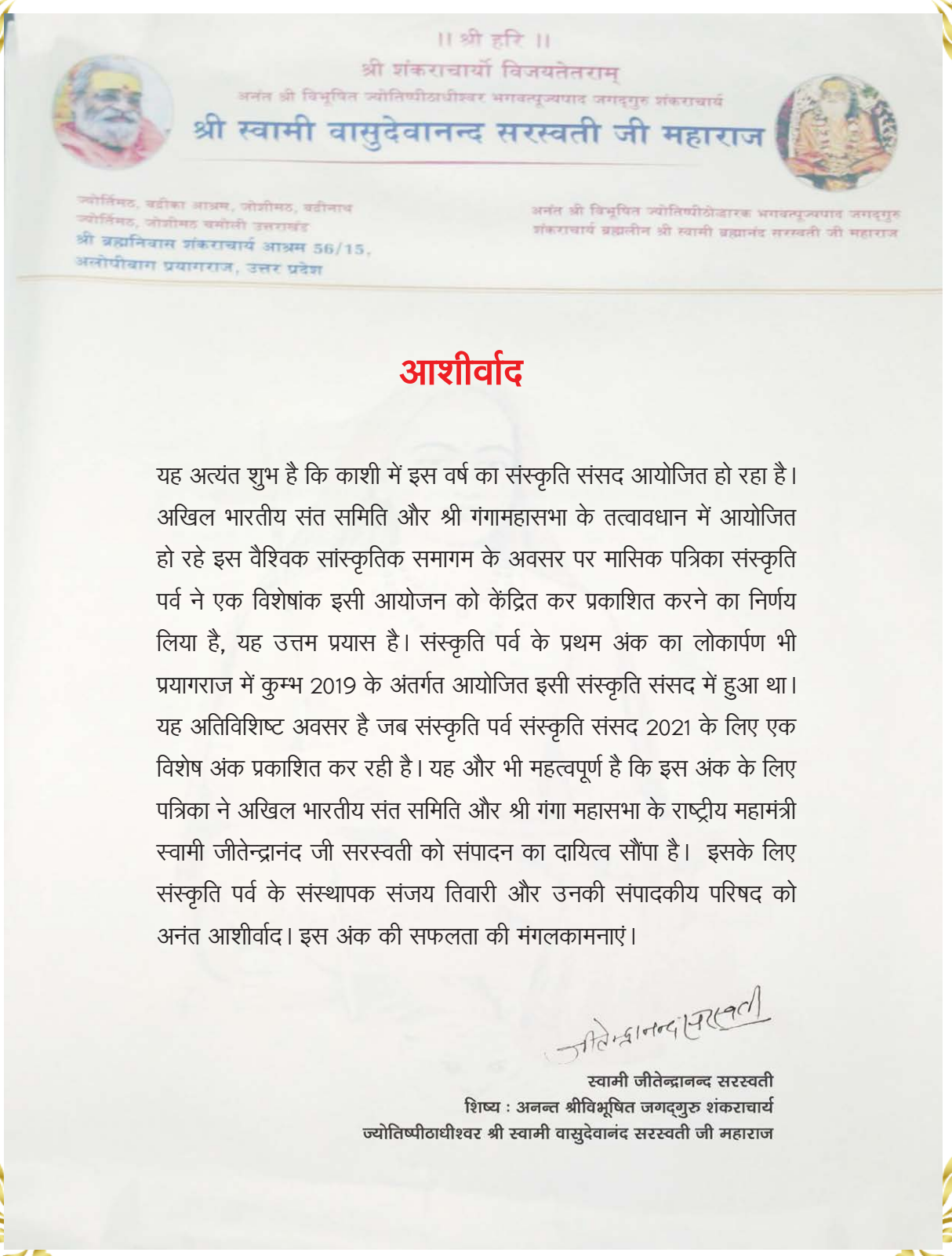

|| श्री हरि ||

श्री शंकराचार्यो विजयतेतराम्

अनंत श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर भगवत्पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्य

श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योर्तिमठ, बद्रीका आश्रम, जोशीमठ, बद्रीनाथ
ज्योर्तिमठ, जोशीमठ चमोली उत्तराखंड
श्री ब्रह्मनिवास शंकराचार्य आश्रम 56/15,
अलोपीबाग प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

अनंत श्री विभूषित ज्योतिष्पीठोद्धारक भगवत्पूज्यपाद जगद्गुरु
शंकराचार्य ब्रह्मलीन श्री स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी महाराज

आशीर्वाद

यह अत्यंत शुभ है कि काशी में इस वर्ष का संस्कृति संसद आयोजित हो रहा है। अखिल भारतीय संत समिति और श्री गंगामहासभा के तत्वावधान में आयोजित हो रहे इस वैश्विक सांस्कृतिक समागम के अवसर पर मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व ने एक विशेषांक इसी आयोजन को केंद्रित कर प्रकाशित करने का निर्णय लिया है, यह उत्तम प्रयास है। संस्कृति पर्व के प्रथम अंक का लोकार्पण भी प्रयागराज में कुम्भ 2019 के अंतर्गत आयोजित इसी संस्कृति संसद में हुआ था। यह अतिविशिष्ट अवसर है जब संस्कृति पर्व संस्कृति संसद 2021 के लिए एक विशेष अंक प्रकाशित कर रही है। यह और भी महत्वपूर्ण है कि इस अंक के लिए पत्रिका ने अखिल भारतीय संत समिति और श्री गंगा महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती को संपादन का दायित्व सौंपा है। इसके लिए संस्कृति पर्व के संस्थापक संजय तिवारी और उनकी संपादकीय परिषद को अनंत आशीर्वाद। इस अंक की सफलता की मंगलकामनाएं।

जीतेन्द्रानन्द सरस्वती

स्वामी जीतेन्द्रानन्द सरस्वती
शिष्य : अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य
ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती जी महाराज

आशीर्वाद

जगद्गुरू
स्वामी वासुदेवाचार्य जी
स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। भगवान शिव की नगरी और इस सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी में इस आयोजन का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में आध्यात्मिक सांस्कृतिक पत्रिका संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। मेरे संज्ञान में है कि गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने सनातन संस्कृति के लिये जो आंदोलन चलाया वैसा ही संकल्प लेकर संस्कृति पर्व के माध्यम से उसे आगे बढ़ाने का संकल्प इस पत्रिका ने लिया है। संस्कृति संसद के आयोजक स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती के सम्पादकत्व में संस्कृति पर्व का प्रकाशित होने जा रहा विशिष्ट अंक निश्चय ही भारत की सांस्कृतिक परम्परा के लिए एक मार्गदर्शक ग्रन्थ के रूप में आएगा ऐसा मेरा विश्वास है।

संस्कृति पर्व के संस्थापक संजय तिवारी समूह सम्पादक प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय और समस्त सम्पादकीय परिषद को हार्दिक शुभकामनाएं। इस अंक की सफलता के लिए आशीर्वाद।

।। नारायण ।।

आशीर्वाद

मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। भगवान शिव की नगरी और इस सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी में इस आयोजन का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में आध्यात्मिक सांस्कृतिक पत्रिका संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। मेरे संज्ञान में है कि गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने सनातन संस्कृति के लिये जो आंदोलन चलाया वैसा ही संकल्प लेकर संस्कृति पर्व के माध्यम से उसे आगे बढ़ाने का संकल्प इस पत्रिका ने लिया है। पत्रिका के पूर्ववर्ती अंकों को में देख चुका हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका के संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करेगी। सनातन सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही आधुनिक विश्व मे सनातन संस्कृति को समझने के उत्सुक लोगों के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा। इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

डॉ राघवाचार्य जी महाराज

शुभकामना संदेश

मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। भगवान शिव की नगरी और इस सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी में इस आयोजन का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में आध्यात्मिक सांस्कृतिक पत्रिका संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। मेरे संज्ञान में आया है कि गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के सनातन कार्यों को संस्कृति पर्व के माध्यम से आगे बढ़ाने का संकल्प इस पत्रिका ने लिया है। इसके लिए अनंत आशीर्वाद एवं शुभकामनाये प्रेषित कर रहा हूँ। मैं भली प्रकार से समझ सकता हूं कि यह कार्य कितना कठिन है। इस अत्यंत श्रमसाध्य कार्य के लिए साधुवाद।

विश्व मे भारत ही ऐसा भू-भाग (देश) है, जहां विश्व के सभी मत, पंथ (मजहब, रिलीजन) तथा उपपन्थों के सम्मान के साथ-साथ स्वीकार्यता भी है, दूसरा अन्य कोई भी भू-भाग (देश) ऐसा नहीं है। भारत की, भारतीय समाज की संस्कृति सर्वसमावेशी है क्योकि इस सनातन संस्कृति के जीवन मूल्य हैं- वसुधैव कुटुम्बकम, सर्वे भवन्तु सुखिनः, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो आदि। सनातन संस्कृति में अत्यंत लचीलापन है। यह संस्कृति मनुष्य को जाति, पंथ, दल, भाषा, भूगोल आदि की विविधता अथवा भेदों आदि से ऊपर उठ कर सभी को जोड़ती है।

संस्कृति पर्व के समूह संपादक प्रो राकेश कुमार उपाध्याय, संस्थापक और संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने जिस प्रकार से इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है वह अद्भुत है। सनातन सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही आधुनिक विश्व मे सनातन संस्कृति को समझने के उत्सुक लोगों के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा।

संस्कृति संसद 2021 के आयोजन और संस्कृति पर्व के इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

इंद्रेश कुमार

शिव प्रताप शुक्ल
SHIV PRATAP SHUKLA
संसद सदस्य एवं मुख्य सचेतक, भा.ज.पा. (राज्यसभा)
Member of Parliament & Chief Whip, B.J.P. (R.S.)
अध्यक्ष आचार समिति, (राज्यसभा)
Chairman, ETHICS Committee, Rajya Sabha
Ex Minister of State Finance, Govt. of India

सत्यमेव जयते

3, Talkatora Road
New Delhi-110001
Phone : 011-2372 3520
स्थायी आवास : 2 अधिकारी निवास,
रीड्स साहब धर्मशाला,बेतिया हाता चौक, गोरखपुर

शुभकामना संदेश

यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी में इस आयोजन का होना स्वयं में महत्वपूर्ण है। संस्कृति संसद के आयोजन को साकार स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए अखिल भारतीय संत समिति एवं श्रीगंगामहासभा के राष्ट्रीय महामंत्री स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती को हृदय से बधाई। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी के सनातन कार्यों को संस्कृति पर्व के माध्यम से आगे बढ़ाने का जो संकल्प संजय तिवारी जी ने लिया है उसके लिए अनंत शुभकामनाये प्रेषित कर रहा हूँ। मैं भली प्रकार से समझ सकता हूं कि यह कार्य कितना कठिन है।

संस्कृति पर्व के समूह संपादक प्रो राकेश कुमार उपाध्याय जी, संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने जिस प्रकार से इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है वह अद्भुत है। संस्कृति पर्व की अब तक यात्रा को बहुत गंभीरता से देखा जा रहा है। सनातन सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही आधुनिक विश्व मे सनातन संस्कृति को समझने के उत्सुक लोगों के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा। संस्कृति संसद 2021 के आयोजन और संस्कृति पर्व के इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

(शिव प्रताप शुक्ल)

श्री संजय तिवारी जी
संपादक
संस्कृति पर्व

ROOPA GANGULY

Member of Parliament
(Rajaya Sabha)

सत्यमेव जयते

Present Address:
Banglow AB-5, Pandara Road,
New Delhi - 110003
Mob. : +91-9013181416
Tel. : +91-11-23782125
Email : roopa.ganguly@sansad.nic.in

Permanent Address:
Royal Greens, Flat A-4th Floor,
49/1, P.G.M. Shah Road
Golf Garden. Kolkata - 700033
Mob. : +91-9830039911, 9831339911
Tel. : +91-33-24825040
E-mail : roopabengal@gmail.com

शुभकामना संदेश

मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। भगवान शिव की नगरी और इस सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी में इस आयोजन का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में आध्यात्मिक सांस्कृतिक पत्रिका संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। मेरे संज्ञान में आया है कि गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने सनातन संस्कृति के लिये जो आंदोलन चलाया वैसा ही संकल्प लेकर संस्कृति पर्व के माध्यम से उसे आगे बढ़ाने का संकल्प इस पत्रिका ने लिया है।

मुझे उम्मीद है कि संस्कृति पर्व के समूह संपादक प्रो राकेश कुमार उपाध्याय, संस्थापक और संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करेगी। सनातन सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही आधुनिक विश्व मे सनातन संस्कृति को समझने के उत्सुक लोगों के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा। इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

Roopa Ganguly

रूपा गांगुली

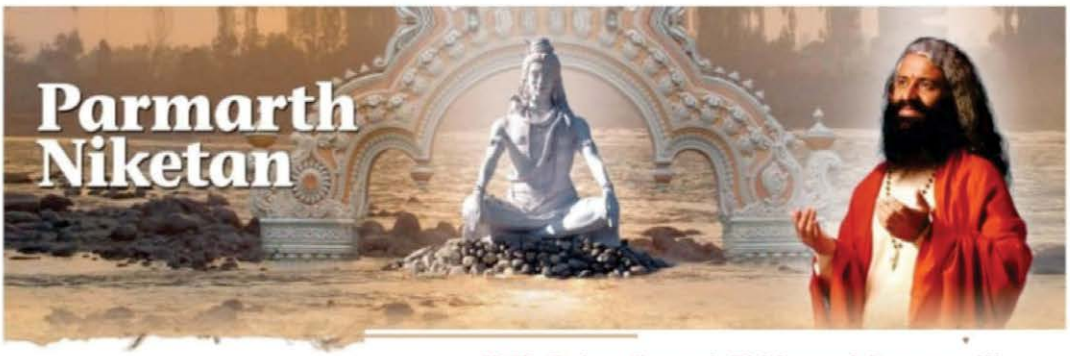

H.H. Pujya Swami Chidanand Saraswatiji
President, Parmarth Niketan

शुभकामना संदेश

सनातन संस्कृति मानव कल्याण की संस्कृति है। यह कोई पंथ या मजहब नही है बल्कि वह जीवन शैली है जो सृष्टि, प्रकृति, समाज और मानव सहित समस्त प्राणि जगत के कल्याण की कामना के साथ गतिशील है। इसी कामना को गति देने के लिए गीताप्रेस के माध्यम से को कार्य भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने शुरू किया वह तो अपने प्रभाव के साथ चल रहा है। कल्याण के माध्यम से भाई की उसी आध्यात्मिक, सनातन यात्रा को आधुनिक स्वरूप में संस्कृति पर्व के माध्यम से संजय तिवारी ने आरंभ किया है।

काशी में हो रही संस्कृति संसद 2021 के अवसर पर संस्कृति पर्व एक विशेष अंक प्रकाशित कर रहा है, यह जान कर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह अंक निश्चित रूप से एक ऐसा संग्रह होगा जिससे विश्व समुदाय को सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति को समझने का माध्यम प्राप्त होगा। संस्कृति पर्व के इस श्रमसाध्य कार्य के लिए संजय जी और उनकी सम्पादकीय परिषद को मैं हृदय से बधाई दे रहा हूँ। संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक की सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

स्वामी चिदानंद

स्वामी चिदानंद सरस्वती
परमाध्यक्ष, परमार्थ निकेतन,
ऋषिकेश

Prmarth Niketan Ashram, PO Swargashram, Rishikesh (Himalayas), Uttarakhand-249304 India Phone: +91-135-2440088, +91-135-2440070 , Fax: +91-135-2440066 .
swamiji@ Parmarth.com, www.PujyaSwamiji.org, OPujyaSwamiji , Twitter/@ PujyaSwamiji
t@ Parmarth.org, Facebook/ParmarthNiketan, O@ ParmarthNiketan ,Youtube/ParmarthNiketan

॥ श्रीहरिः ॥

Phone : (0551) 2333030, 2334721
website : www.gitapress.org
E-mail : manager@gitapress.org
Mob. : 9415379509, 8188054401

डॉ० लालमणि तिवारी
(मैनेजर)
गीताप्रेस, गोरखपुर

शुभकामना संदेश

संस्कृति पर्व की सांस्कृतिक यात्रा के अगले पड़ाव की सूचना अत्यंत सुखद है। मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संसद–2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी पुरी में इस आयोजन का होना स्वयं में महत्वपूर्ण है। सनातन संस्कृति के इस विराट यज्ञ में संस्कृति पर्व की यह भूमिका अत्यंत विशिष्ट है। गीता प्रेस के माध्यम से भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के सनातन कार्यों को संस्कृति पर्व के माध्यम से आगे बढ़ाने का जो संकल्प संजय तिवारी ने लिया है उसके लिए अनंत आशीर्वाद एवं शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ। मैं भली प्रकार से समझ सकता हूँ कि यह कार्य कितना कठिन है। इस अत्यंत श्रमसाध्य कार्य के लिए साधुवाद।

संस्कृति पर्व के संस्थापक और संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने जिस प्रकार से इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है वह अद्‌भुत है। संस्कृति पर्व की अब तक यात्रा को बहुत गंभीरता से देखा जा रहा है। सनातन सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही आधुनिक विश्व में सनातन संस्कृति को समझने के उत्सुक लोगों के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा। संस्कृति संसद 2021 के आयोजन और संस्कृति पर्व के इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

लालमणि तिवारी

– डॉ० लालमणि तिवारी

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

Sanjay Rai ‘Sherpuriya’

National Brand Ambassador
SDG Choupal

शुभकामना संदेश

यह जान कर अतीव आह्लादित करने वाली अनुभूति हो रही है कि संस्कृति संसद- 2021 के आयोजन को केंद्र में रख कर संस्कृति पर्व पत्रिका एक अति विशिष्ट अंक प्रकाशित कर रही है। सृष्टि की सांस्कृतिक राजधानी काशी पुरी में इस आयोजन का होना स्वयं में महत्वपूर्ण है। संस्कृति संसद के आयोजन में निमित्त बनी श्री गंगामहासभा और अखिल भारतीय संत समिति के साथ ही इन सभी को साकार स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए पूज्य स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती को नमन करता हूँ। संस्कृति पर्व को इस विराट सनातन यज्ञ का हिस्सा बनने का जो अवसर प्राप्त हुआ है उसके लिए पूज्य स्वामी जी के प्रति हृदय से आभार।

संस्कृति पर्व के समूह संपादक प्रो राकेश कुमार उपाध्याय जी, संपादक संजय तिवारी जी और संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने जिस प्रकार से इस अंक को अतिविशिष्ट एवं भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक स्मारक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है वह अद्भुत है। संस्कृति पर्व के संरक्षक के रूप में पूरी सम्पादकीय परिषद को बधाई। संस्कृति संसद 2021 के आयोजन और संस्कृति पर्व के इस अप्रतिम अंक के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

संजय राय शेरपुरिया

House No. 1, Beside Race Course, Safdarjung Rd, near DID, New Delhi, 110003

Website	Mobile	Email	Facebook	Twitter
www.sanjayrai.org	87662299275	sanjay@sanjayrai.org	@sanjayraisocialentrepreneur	#sanjaysherpuria

अतिथि सम्पादक

संस्कृति संसद - 2021
सनातन सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना का यज्ञ

यह पथ सनातन है। समस्त देवता और मनुष्य इसी मार्ग से पैदा हुए हैं तथा प्रगति की है। हे मनुष्यों आप अपने उत्पन्न होने की आधाररूपा अपनी माता को विनष्ट न करें। *–ऋग्वेद-3-18-1*

सनातन में आधुनिक और समसामयिक चुनौतियों का सामना करने के लिए इसमें समय समय पर बदलाव होते रहे हैं। यद्यपि आज सनातन का पर्याय हिन्दू है पर बौद्ध, जैन धर्मावलम्बी भी सनातनी ही हैं, क्योंकि बुद्ध भी अपने को सनातनी कहते हैं। यहाँ तक कि नास्तिक जो कि चार्वाक दर्शन को मानते हैं वह भी सनातनी हैं।

आधुनिक विश्व। वर्तमान परिदृश्य। मनुष्यता पर संकट। सनातन सिद्धांतों की या तो उपेक्षा या उपहास। मानव सभ्यता के उत्कर्ष के लिए रचित सनातन सिद्धांतों की इसी उपेक्षा या उपहास ने आज पृथ्वी और सृष्टि के सामने संकट खड़ा कर दिया है। यह संकट आयातित अथवा अमानवीय कुछ सत्ताओं द्वारा निर्मित है। इसको यूं ही देख नही सकते। मानव देह को सम्पूर्ण मनुष्य के रूप में अभिसिंचित कर मानवता की स्थापना के लिए हमारे पास सभी साधन उपलब्ध हैं। अब समय आ गया है कि अपने उन्ही साधनों से आधुनिक विश्व को ठीक से परिचित करा कर मानवीय मूल्यों और सिद्धांतों वाले उस मार्ग को ओर लेकर बढ़ा जाय, जो मनुष्यता के लिए हितकर है। यह केवल सनातन संस्कृति ही है जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्मांड, सृष्टि, पृथ्वी, समस्त प्राणियों, वनस्पतियों के साथ साथ मनुष्यता को व्यवस्थित करने और मानवीय सत्ता स्थापित करने की शक्ति है। काशी में हो रही संस्कृति संसद 2021 इसी दिशा में होरहा एक ऐसा प्रयास है जिसको सनातन सिद्धांतो की पुनर्स्थापना का यज्ञ कहना बिल्कुल समीचीन होगा।

सनातन संस्कृति मूलतः श्रुति पर आधारित है। समयानुकूल भाषाई सरलता के कारण श्रुति को स्मृति, उपनिषद, शास्त्र, पुराण , इतिहास और साहित्य के रूप में हमारे मनीषियों, आचार्यों और संत पुरुषों ने इसको व्यख्यायित किया और परंपरा के रूप में लोक में स्थापित किया है। ये परंपराएं अभी भी लोकानुकूल क्रियाशील हैं। ॐ एक ऐसा संकेत है जो ध्वनि और भाषा दोनो ही के लिए सर्वोच्च है। यह सनातन का प्रतीक चिह्न ही नहीं बल्कि सनातन परम्परा का सबसे पवित्र शब्द है । सनातन धर्मः (वैदिक धर्म) जो वैदिक धर्म के वैकल्पिक नाम से जाना जाता है।वैदिक काल में भारतीय उपमहाद्वीप के धर्म के लिये 'सनातन धर्म' नाम मिलता है। 'सनातन' का अर्थ है – शाश्वत या 'हमेशा बना रहने वाला', अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त। सनातन धर्म मूलतः भारतीय धर्म है, जो किसी ज़माने में पूरे वृहत्तर भारत (भारतीय उपमहाद्वीप) तक व्याप्त रहा है। विभिन्न कारणों से हुए भारी धर्मान्तरण के बाद भी विश्व के इस क्षेत्र की बहुसंख्यक आबादी इसी धर्म में आस्था रखती है। सनातन संस्कृति जिसे आज हिन्दू धर्म अथवा वैदिक धर्म भी कहा जाता है, का 1960853110 वर्षों का इतिहास हैं। भारत और आधुनिक पाकिस्तानी क्षेत्र की सिन्धु घाटी सभ्यता में हिन्दू धर्म के कई चिह्न मिलते हैं। इनमें एक अज्ञात मातृदेवी की मूर्तियाँ, शिव पशुपति जैसे देवता की मुद्राएँ, लिंग, पीपल की पूजा, इत्यादि प्रमुख हैं। प्राचीन काल में सनातन संस्कृति में गाणपत्य, शैवदेवःकोटी वैष्णव, शाक्त और सौर नाम के पाँच सम्प्रदाय होते थे। गाणपत्य गणेशकी, वैष्णव विष्णु की, शैवदेवःकोटी शिव की, शाक्त शक्ति की और सौर सूर्य की पूजा आराधना किया करते थे। पर यह मान्यता थी कि सब एक ही सत्य की व्याख्या हैं। यह न केवल ऋग्वेद परन्तु रामायण और महाभारत जैसे लोकप्रिय ग्रन्थों में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है।

सनातन संस्कृति में सबसे महत्वपूर्ण स्थान धर्माचार्यों को दिया गया। राज, समाज और परिवार के संचालन में आचार्यों और धर्मगुरुओं का विशेष महत्व रहा है।

सामान्य जन के बीच कोई भेद अथवा कोई भ्रम न उत्पन्न हो इसलिए धर्मगुरुओं ने लोगों को यह शिक्षा देना आरम्भ किया कि सभी देवता समान हैं, विष्णु, शिव और शक्ति आदि देवी-देवता परस्पर एक दूसरे के भी भक्त हैं। उनकी इन शिक्षाओं से सभी सम्प्रदायों में मेल हुआ और समन्वित सनातन जीवन संस्कृति की उत्पत्ति हुई। इसमें विष्णु, शिव और शक्ति को समान माना गया और तीनों ही सम्प्रदाय के समर्थक इस धर्म को मानने लगे। सनातन धर्म का सारा साहित्य वेद, पुराण, श्रुति, स्मृतियाँ,उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि संस्कृत भाषा में रचा गया है।

कालान्तर में भारतवर्ष में मुसलमान शासन हो जाने के कारण देवभाषा संस्कृत का ह्रास हो गया तथा सनातन धर्म की अवनति होने लगी। इस स्थिति को सुधारने के लिये विद्वान संत तुलसीदास ने प्रचलित भाषा में धार्मिक साहित्य की रचना करके सनातन धर्म की रक्षा की। जब औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन को ईसाई, मुस्लिम आदि धर्मों के मानने वालों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये जनगणना करने की आवश्यकता पड़ी तो सनातन शब्द से अपरिचित होने के कारण उन्होंने यहाँ के धर्म का नाम सनातन धर्म के स्थान पर हिंदू धर्म रख दिया।

'सनातन धर्म', हिन्दू धर्म का वास्तविक नाम है। सत्य दो धातुओं से मिलकर बना है सत् और तत्। सत का अर्थ यह और तत का अर्थ वह। दोनों ही सत्य है। अहं ब्रह्मास्मी और तत्वमसि। अर्थात मैं ही ब्रह्म हूँ और तुम ही ब्रह्म हो। यह संपूर्ण जगत ब्रह्ममय है। ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत् भी पूर्ण है। पूर्ण जगत् की उत्पत्ति पूर्ण ब्रह्म से हुई है। पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होने पर भी ब्रह्म की पूर्णता में कोई न्यूनता नहीं आती। वह शेष रूप में भी पूर्ण ही रहता है। यही सनातन सत्य है।

सनातन में आधुनिक और समसामयिक चुनौतियों का सामना करने के लिए इसमें समय समय पर बदलाव होते रहे हैं। यद्यपि आज सनातन का पर्याय हिन्दू है पर बौद्ध, जैन धर्मावलम्बी भी सनातनी ही हैं, क्योंकि बुद्ध भी अपने को सनातनी कहते हैं। यहाँ तक कि नास्तिक जो कि चार्वाक दर्शन को मानते हैं वह भी सनातनी हैं। सनातन धर्मी के लिए किसी विशिष्ट पद्धति, कर्मकांड, वेशभूषा को मानना जरुरी नहीं। बस वह सनातनधर्मी परिवार में जन्मा हो, वेदांत, मीमांसा, चार्वाक, जैन, बौद्ध, आदि किसी भी दर्शन को मानता हो बस उसके सनातनी होने के लिए पर्याप्त है। सनातन धर्म की गुत्थियों को देखते हुए कई बार इसे कठिन और समझने में मुश्किल धर्म समझा जाता है। हालांकि, सच्चाई तो ऐसी नहीं है, फिर भी इसके इतने आयाम, इतने पहलू हैं कि लोगबाग कई बार इसे लेकर भ्रमित हो जाते हैं। सबसे बड़ा कारण इसका यह कि सनातन धर्म किसी एक दार्शनिक, मनीषा या ऋषि के विचारों की उपज नहीं है, न ही यह किसी ख़ास समय पैदा हुआ। यह तो अनादि काल से प्रवाहमान और विकासमान रहा। साथ ही यह केवल एक दृष्टा, सिद्धांत या तर्क को भी वरीयता नहीं देता।

सनातन धर्म का मार्ग और इसके सिद्धांत स्वयं में महाविज्ञान हैं। आधुनिक विज्ञान जब प्रत्येक वस्तु, विचार और तत्व का मूल्यांकन करता है तो इस प्रक्रिया में धर्म के अनेक विश्वास और सिद्धांत धराशायी हो जाते हैं। विज्ञान भी सनातन सत्य को पकड़ने में अभी तक कामयाब नहीं हुआ है किंतु वेदांत में उल्लेखित जिस सनातन सत्य की महिमा का वर्णन किया गया है विज्ञान धीरे-धीरे उससे सहमत होता नजर आ रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ध्यान और मोक्ष की गहरी अवस्था में ब्रह्म, ब्रह्मांड और आत्मा के रहस्य को जानकर उसे स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया था। वेदों में ही सर्वप्रथम ब्रह्म और ब्रह्मांड के रहस्य पर से पर्दा हटाकर 'मोक्ष' की धारणा को प्रतिपादित कर उसके महत्व को समझाया गया था। मोक्ष के बगैर आत्मा की कोई गति नहीं इसीलिए ऋषियों ने मोक्ष के मार्ग को ही सनातन मार्ग माना है।

हमारे शास्त्र स्पष्ट कहते हैं-

राजा धर्ममृते द्विजः पवमृते विद्यामृते योगिनः
कान्ता सत्वमृते हयो गतिमृते भूषा च शोभामृते।
योद्धा शूरमृते तपो वृतमते गीतं च पद्यान्यृते
भ्राता स्नेहमृते नरो हरिमृते लोके न भाति क्वचित्।।

अर्थात, धर्म रहित राजा, पवित्रता रहित ब्राह्मण, ब्रह्मविद्या रहित योगी, सतीत्व रहित स्त्री, गति रहित घोडा, सुन्दरता रहित आभूषण, वीरता रहित योद्धा, व्रत रहित तप, पद्य रहित गान, स्नेह रहित भाई और भगवत्प्रेम रहित मनुष्य संसार मे कही भी शोभा नहीं पाते।

सनातन की इसी स्थापना के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिये काशी की संस्कृति संसद आयोजित है। अपने समस्त आचार्यों, संतों, मनीषियों की उपस्थिति में होने वाले मंथन से जो प्राप्त होगा वह निश्चय ही विश्व को कल्याण के पथ पर ले कर आगे बढ़ेगा। हम तो निमित्त मात्र हैं।

।। नारायण।।

जीतेन्द्रानन्द सरस्वती

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती
आयोजकः संस्कृति संसद-2021
महामत्री अखिल भारतीय संत समिति
एवं महामंत्री श्री गंगा महासभा, काशी

संस्कृति संसद 2021 और संस्कृति पर्व

इस समय विश्व की निगाहें भारत पर टिकी हैं। भारत से बहुत उम्मीदें हैं। मानव जगत को भारतीय मूल्यों, परंपराओं और संस्कारों की अत्यंत अवाश्यकता है। भारत के दर्शन, साहित्य, इतिहास और महापुरुषों के जीवन दर्शन को विश्व ठीक से समझने के प्रयास में है। बिना भारत और भारतीयता का आश्रय लिए विश्व का कोई कोना सुगम जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। ऐसे परिवेश में भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी में संस्कृति संसद का आयोजन और इस अवसर पर पत्रिका संस्कृति पर्व के विशेषांक का प्रकाशन बहुत ही महत्वपूर्ण है। काशी का यह आयोजन निश्चय ही विश्व मे मानवता के लिए बहुत सुखद संदेश देने वाला है।

संस्कृति पर्व का यह विशेषांक मानव जीवन को संस्कार युक्त बनाने और सार्थक दिशा देने में सक्षम साहित्य के रूप में सामने आ सकेगा, ऐसा विश्वास है। किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए यह गर्व का क्षण होता है जब उसके प्राणतत्व की वास्तविक विवेचना और उसके संवर्धन के सटीक प्रयास किये जाते हैं। यह संबंधित समाज के लोक द्वारा किया जाता है।

यह सौभाग्य है कि भारत की महान संत परंपरा और रचना शील समुदाय इस कार्य को अपने हाथ मे लेकर करते हैं। अखिल भारतीय संत समिति के और श्री गंगामहासभा के राष्ट्रीय महामंत्री स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती ने जिस मनोयोग और परिश्रम से संस्कृति संसद का आयोजन कर भारतीय सनातन परंपरा की पुनर्स्थापना का संकल्प लिया है वह प्रणम्य है। इस अवसर पर संस्कृति पर्व के विशेष अंक के प्रकाशन के लिए इसके समूह संपादक प्रो राकेश कुमार उपाध्याय और संथापक संपादक संजय तिवारी का परिश्रम निश्चय ही लोक कल्याण और सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए शुभ फलदायी होगा।

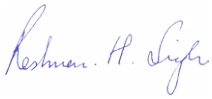

(रेशमा एच सिंह)

राष्ट्रीय महामंत्री, राष्ट्रीय सुरक्षा जागरण मंच

उपाध्यक्ष, आयोजन समिति, संस्कृति संसद 2021

अध्यक्ष, सलाहकार परिषद, संस्कृति पर्व

प्रबंध सम्पादक की कलम से

विश्व इस समय एक विशेष प्रकार के संत्रास के दौर में है। विगत दो वर्षों में जैविक संक्रमण को महामारी के रूप में सभी ने झेला है। छोटे से लेकर हर बड़े और विकसित देश को संकट से गुजरना पड़ा है। इस महान संकट ने दुनिया को भारतीय मूल्यों और भारतीय सनातन तत्वों की ओर देखने और समझने की दृष्टि दी है। भारतीय सभ्यता और लोक परंपरा से विश्व ने बहुत कुछ सीखना शुरू कर दिया है।

इस समय विश्व की निगाहें भारत पर टिकी हैं। भारत से बहुत उम्मीदें हैं। मानव जगत को भारतीय मूल्यों, परंपराओं और संस्कारों की अत्यंत अवाश्यकता है। भारत के दर्शन, साहित्य, इतिहास और महापुरुषों के जीवन दर्शन को विश्व ठीक से समझने के प्रयास में है। बिना भारत और भारतीयता का आश्रय लिए विश्व का कोई कोना सुगम जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। ऐसे परिवेश में भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी में संस्कृति संसद का आयोजन और इस अवसर पर पत्रिका संस्कृति पर्व के विशेषांक का प्रकाशन बहुत ही महत्वपूर्ण है। काशी का यह आयोजन निश्चय ही विश्व मे मानवता के लिए बहुत सुखद संदेश देने वाला है। संस्कृति पर्व का यह विशेषांक मानव जीवन को संस्कार युक्त बनाने और सार्थक दिशा देने में सक्षम साहित्य के रूप में सामने आ सकेगा, ऐसा विश्वास है।

किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए यह गर्व का क्षण होता है जब उसके प्राणतत्व की वास्तविक विवेचना और उसके संवर्धन के सटीक प्रयास किये जाते हैं।

संस्कृति पर्व ने अपने इस विशेष अंक के संयोजन में यह प्रयास किया है कि भारतीय मूल्यों को प्रसारित करने की दिशा में कुछ अच्छा और गतिमान हो सके। मुझे भरोसा है कि आप सभी को यह अंक महत्वपूर्ण और लाभकारी लगेगा।

इस अति विशिष्ट अंक के संयोजन और प्रकाशन के लिए संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद को बधाई। हृदय से शुभकामनाएं।

बी के मिश्रा

विश्व कल्याण के लिए काशी का सनातन उद्घोष

संजय तिवारी

कासिपुरी, काशी, वाराणसी और बनारस। पतित पावनी मां गंगा का तट। समग्र सृष्टि और विश्व के नाथ भगवान विश्वनाथ की नगरी। इसी काशी में हैं सृष्टि के प्राण तत्व। अयोध्या पुरी में अवस्थित भगवान मनु से आरंभ सृष्टि की अंतर्धारा मां गंगा के साथ काशी में अवस्थित होती है। माँ गंगा भी एक प्रकार से श्री अयोध्या धाम की ही पुत्री हैं क्योंकि इक्ष्वाकु कुल के भगीरथ ही इन्हें पृथ्वी पर लेकर आये। काशी और अयोध्या जी का यह संबंध अद्भुत है। मथुरा भी उसी इक्ष्वाकु कुल एक वंश की राजधानी रही है। काशी, अयोध्या और मथुरा के किसी इतिहास या विस्तार पर अभी चर्चा नहीं। इस अंक की महत्ता यह कि काशी में आयोजित संस्कृति संसद- 2021 की उपादेयता और इसके उद्घोष का अभिप्राय क्या है। जिस परिवेश में यह आयोजन हो रहा वह महत्वपूर्ण है। विगत लगभग आठ वर्षों से भारत एक अघोषित युद्ध लड़ रहा। सनातन की स्थापना का युद्ध तब और ही महत्वपूर्ण हो जाता है जब विश्व की एकमात्र उम्मीद की किरण बन कर भारत आज उभर रहा है। इसमे कोई दो राय नही कि इसके पीछे भारत के वर्तमान राजनैतिक नेतृत्व की दृढ़ संकल्पशक्ति है। यह संयोग ही है कि हमारे राष्ट्र नायक इसी काशी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। काशी के इस प्रतिनिधि ने सनातन की स्थापना के इस युद्ध मे स्वयं को एक महायोद्धा के रूप में स्थापित भी किया है। वह श्री अयोध्याधाम का पुनरुद्धार हो, केदार का कायाकल्प हो या काशी का श्रृंगार। भगवान आदिशंकराचार्य की समाधिस्थल के बारे में तो सामान्य लोग जानते तक नही थे, लेकिन आज दुनिया उस स्थल के प्रकाश से अचंभित भी है और आलोकित भी। आज यदि वास्तव में कश्मीर से कन्या कुमारी तक , पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक भारत भूमि में सनातन सिद्धांतों के गीत गाये जा रहे और अपनी सांस्कृतिक भावनाओं के साथ देश आगे बढ़ रहा है तो यह निश्चय ही हमारे राजनैतिक नेतृत्व की संकल्प शक्ति से ही संभव हो रहा है। स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी, गृह मंत्री अमित शाह जी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी के सद्प्रयासों से ही यह वातावरण तैयार हुआ है।

ऐसे समय मे यदि श्री गंगामहासभा और अखिल भारतीय संत समिति ने काशी में ही संस्कृति संसद के आयोजन का निर्णय लिया है तो स्वाभाविक है कि यह एक सामान्य आयोजन नही है। वास्तव में यह काशी का विश्वघोष है जिसमे सनातन मूल्यों की अवधारणा से विश्व लाभान्वित होगा ।

जिन लोगो को अब दुनिया समझ में आ रही है उनको भारत और भारतीयता भी समझ में आने लगी है । वे इस तथ्य को बखूबी समझाने लगे है कि अगर भारतीयता , जिसे भारत की संस्कृति कहा जाता है , यदि उसको अंगीकार नहीं किया गया तो दुनिया नष्ट हो जायेगी । संघर्षो और युद्धों से किसी का भला नहीं होने वाला । युद्ध न तो कभी विकल्प था और न कभी हो सकता है लेकिन इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि अनैतिकता और अधार्मिकता को बढ़ने दिया जाय और हम तमाशबीन बने रहे ।

ऐसा नहीं है क्यों कि हमारी संस्कृति इस बात की भी संरचना करती है कि जब आसुरी वृत्तियां बढ़ें तो उनसे निपटना कैसे है। त्रेता और द्वापर के सबसे बड़े युद्ध सनातन के ही नायकों ने लड़ा और धर्म की स्थापना की। आज से पांच हज़ार साल पहले जब समाज और सत्ता अधर्म के मार्ग पर चल रहे थे, अनैतिकता इतनी बढ़ चुकी थी कि राजपरिवार के एक पक्ष के लोग अपने ही परिवार के दूसरे पक्ष की बहू के शरीर से उसका वस्त्र भरी सभा में उतार रहे थे तब उस युग के महानायक को युद्ध ही विकल्प दिखा । तब उसने ऐसा युद्ध कराया की वह अनैतिक सभ्यता सदा के लिए ही ख़त्म हो गयी और नए सिरे से न्याय का शासन स्थापित हुआ।

ठीक है कि उस न्याय के शासन के बाद हमने पांच हज़ार साल से ज्यादा समय की यात्रा कर ली है। आज का मनुष्य उस समय की अवधारणाओ को जितना संचित रख सका है उससे ज्यादा भूल चुका है, लेकिन केवल भारतीय संस्कृति के सनातन तत्व हैं जो अभी भी हमारे पास सुरक्षित है । यह भी तथ्य है कि इतनी लम्बी यात्रा के दौरान इस संस्कृति पर भी सभ्यताओ की परतो की कुछ मोटी, कुछ मैली धूल की परत जम गयी है। इस परत के कारण ही भारत की धरती पर पिछले ढाई हज़ार वर्षो में कई बार कई ऐसे महापुरुषों ने यह प्रयास किया कि इस परत को साफसुथरा कर के भारत की मूल आत्मा को विकसित होने दिया जाय लेकिन दुर्भाग्य यह हुआ कि जिन जिन ने ऐसे शोधन के प्रयास किये उन्ही के अनुयायियों ने एक नए पंथ का की निर्माण कर दिया। हर बार इसे नयी नयी पूजा पद्धतियों से जोड़ने की ऐसी कोशिशे हुई की पूरी अवधारणा ही दायित्व वाले धर्म से पूजा वाले धर्म के रूप में स्थापित हो गयी। प्रचलन ऐसा बिगड़ा की भारत की मानवीय संस्कृति को भी एक पंथ या मज़हब जैसा देखा जाने लगा। हमारी सनातनता को इन अज्ञानी लोगो ने नष्ट करने की खूब कोशिश की। उसे पूजा पद्धति बनाने का प्रयास हुआ। आज भी बहुत से लोग अज्ञानतावश इसे एक पूजापद्धति मानने की गलती कर बैठते है और इसी को सत्ता लोलुप राजनीति के अलमबरदार अपना हथिया भी बनाने की कोशिश करते है । यह वास्तव में समय का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि जिस भारतीयता को लेकर आज पूरा पश्चिम चौधियाया हुआ है, हमारे देश के भीतर उसको लेकर पंथिक बहसे हो रही है।

आज विश्व हमारी तरफ आशा भरी निगाह से देख रहा है । अब उसकी समझ में यह तथ्य आ चूका है कि भारतीयता को अपनाए बिना कोई समाधान संभव नहीं है। आज की नयी नयी खतरनाक बीमारियों के इलाज के लिए वह भारतीय शास्त्र खंगाल रहा है । आज मन की अशांति को दूर करने के लिए वह भारत के योग और आध्यात्म को अपना रहा है । जीवन को सुगम बनाने के लिए वह भारत के शास्त्रों का खोज खोज कर अध्ययन कर रहा है । जीवन की अवधारणा को समझाने और जीवन प्रबंधन के लिए वह गीता के श्लोको के सही अर्थ तलाश रहा है । भारतीय वांग्मय और चिंतन में वह डूबना चाहता है। अब वह भारत को सपेरो और मदारियों का देश नहीं मानता । उसे इस धरती पर केवल भारत से ही जीवन की उम्मीद मिल रही है । यह बात केवल आज की भी नहीं है , पश्चिम में अब तक जितने भी बड़े दार्शनिक , विचारक , साहित्यकार , लेखक और वौज्ञानिक हुए है , सभी ने यह माना है कि विश्व का हित केवल भारतीयता ही कर सकती है।

“आज विश्व हमारी तरफ आशा भरी निगाह से देख रहा है । अब उसकी समझ में यह तथ्य आ चूका है कि भारतीयता को अपनाए बिना कोई समाधान संभव नहीं है। आज की नयी नयी खतरनाक बीमारियों के इलाज के लिए वह भारतीय शास्त्र खंगाल रहा है । आज मन की अशांति को दूर करने के लिए वह भारत के योग और आध्यात्म को अपना रहा है । जीवन को सुगम बनाने के लिए वह भारत के शास्त्रों का खोज खोज कर अध्ययन कर रहा है । जीवन की अवधारणा को समझाने और जीवन प्रबंधन के लिए वह गीता के श्लोको के सही अर्थ तलाश रहा है । भारतीय वांग्मय और चिंतन में वह डूबना चाहता है।”

प्रख्यात इतिहासकार और प्राचीन भारत के इतिहास पर सबसे बड़ा शोध कर अद्भुत भारत नामक ग्रन्थ के रचयिता ए एल वाशम स्वयं स्वीकार कर चुके है कि भारत की धरती कोई सामान्य धरती नहीं है , इस धरती ने ही मनुष्य को संस्कृति दी है और आने वाले समय में विश्व को यदि कही से कुछ दिशा मेलने की उम्मीद है तो सिर्फ भारत से ही है । भारत और भारतीय सनास्कृति ही विश्व की प्रत्येक सभ्यताओं का मार्गदर्शन करा पाने में सक्षम है । आज ए एल वाशम की भविष्यवाणी के साथ ही पुरातन अतीत के प्रमाणों ने विश्व को सनातन से जोड़ना और जुड़ा हुआ प्रमाणित करना शुरू कर दिया है। सनातन संस्कृति अर्थात भारतीय संस्कृति अर्थात हिन्दू आस्था की जड़ों के प्रमाण विश्व के कोने कोने से मिल रहे हैं। यह धरती मूल रूप से सनातन संस्कृति के साथ ही गति करती रही है। इस धरती और इस पर विद्यमान सृष्टि के लिए एक मात्र जीवन साधन सनातन ही है। ऐसे समय मे काशी में आयोजित संस्कृति संसद से जो उद्घोष होगा उससे विश्व की दिशा और दृष्टि मिलने जा रही है।

“
भारत और भारतीय सनास्कृति ही विश्व की प्रत्येक सभ्यताओं का मार्गदर्शन करा पाने में सक्षम है । आज ए एल वाशम की भविष्यवाणी के साथ ही पुरातन अतीत के प्रमाणों ने विश्व को सनातन से जोड़ना और जुड़ा हुआ प्रमाणित करना शुरू कर दिया है। सनातन संस्कृति अर्थात भारतीय संस्कृति अर्थात हिन्दू आस्था की जड़ों के प्रमाण विश्व के कोने कोने से मिल रहे हैं। यह धरती मूल रूप से सनातन संस्कृति के साथ ही गति करती रही है। इस धरती और इस पर विद्यमान सृष्टि के लिए एक मात्र जीवन साधन सनातन ही है।
”

इसी को केंद्रित कर संस्कृति पर्व ने इस विशेष अंक का आयोजन किया है। यह अंक इसलिए भी आवश्यक लगा क्योकि विश्व के साथ साथ भारत की ही भावी और नई पीढ़ी को उसके गौरव पूर्ण अतीत से अवगत कराना बहुत आवश्यक है। इस अंक के प्रकाशन की तैयारी के लिए बहुत ही कम समय मिल सका। इस अल्प समय मे भी देश के विद्वान आचार्यो ने बहुत सहयोग किया है। महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति आचार्य रजनीश शुक्ल जी, गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति और प्रख्यात दार्शनिक आचार्य सभाजीत मिश्र जी, श्री लालबहादुर शात्री संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के कुलपति आचार्य मुरली मनोहर पाठक जी, गोरखपुर विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष आचार्य हिमांशु चतुर्वेदी जी, भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य राकेश कुमार उपाध्याय जी का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ कि अपने व्यस्ततम समय मे से समय की व्यवस्था कर आप सभी ने इस अंक को संग्रहणीय बनाने में अद्भुत योगदान दिया है। मैं हृदय से आभारी हूँ संस्कृति पर्व के मुख्य आयोजक और कल्पनाकार, अखिल भारतीय संत समिति और श्री गंगा महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री पूज्य स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती का , जो अति व्यस्तत होते हुए भी इस अंक के अतिथि संपादक की भूमिका के लिए मेरे निवेदन को स्वीकार किये और हमारा मार्गदर्शन भी करते रहे।

संस्कृति संसद 2021 के लिए यह अंक अब आपके हाथों में है। आप के सुझाव और आशीर्वाद की प्रतीक्षा है।

प्रेरणा

सत्सङ्ग

सिद्धांत और जीवन

यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक प्राणी का आचरण उसके ज्ञान के अनुसार ही होता है। अपने ज्ञान के विरूद्ध अथवा धारणा के विपरीत कोई काम नहीं किया जा सकता। हां, विवशता की बात दूसरी हैं। चूंकि हम समझते है कि रुपये, स्त्री, पुत्र, यह शरीर अच्छी चीज हैं, अतएव इनकी रक्षा के लिए सदैव सचेष्ट रहते हैं। यहां तक कि हमारी प्रत्येक क्रिया ही उसी को लक्ष्य करके होती है। यदि ह्रदय के कोने कोने में यह बात बैठ जाए कि एक मात्र सच्चिदानंद प्रभु या आत्म तत्व के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है, सबकुछ वही या 'मैं' हूं, तो इस मिथ्या त्वैन निश्चित प्रकृति और प्राकृत पदार्थों के सम्बंध में होने वाले शुभ या अशुभ कर्मों की ओर वृत्तियों की प्रवृत्ति होना संभव नहीं है। उदाहरणतः जिसे पूणर्तया यह बात मालूम हो गयी कि जिसे हम जल के रूप में देख रहे हैं वह मरूमरिचिका जल है तो वह प्यास लगने पर भी कदापि उधर पानी के लिये नहीं जा सकता, बल्कि दूसरा कोई जाता दिखेगा तो उसे भी रोकने की चेष्टा करेगा, और कोई जाने के लिए विवश करे तो भी प्रसन्नता से नहीं जाएगा। वैसे ही जिन्होंने जगत का मिथ्यात्व जान लिया, इसकी दुखरूपता और हेयता का विचार कर लिया, वे कभी जगत की नानाविध प्रवृत्तियों में नहीं जा सकते।

स्वामी अखण्डानंद सरस्वती

नयी काशी

मानव कल्याण के लिए सनातन के पुनरुद्धार का जयघोष

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

'काल के वेग से जब सनातन धर्म पीड़ित है, इस भूमि पर जहां चारों ओर दुर्व्यवस्था फैली है और जब संपूर्ण मानव समुदाय व्याकुल हो चला है। आज जब कलियुग के पांच हजार वर्ष इस भारत भूमि पर बीत चले हैं तब इस काशी क्षेत्र में पावन गंगा के तट पर काशी विश्वनाथ की कृपा से इस महान सनातन जीवन के पुनरोद्धार का बीज बोया जा रहा है।' वर्ष 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के बुनियादी पत्थर के भीतर रखे गए ताम्रपत्र की यही प्रारंभिक पंक्तियां हैं, जो इसके पूज्य संस्थापक भारत रत्न पंडित महामना मदन मोहन मालवीय जी के हृदय में सनातन वैदिक हिन्दू धर्म और उसके महान केंद्रों के पुनरोद्धार के संकल्प को व्यक्त करती हैं।

देश के धार्मिक केंद्रों विशेष रूप से काशी की दशा बदलने के बारे में महामना के संकल्प को महात्मा गांधी ने भी देश के सामने विनत किन्तु आवेश युक्त शब्दों में प्रकट किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापना समारोह में 6 फरवरी 1916 को दिए गए अपने भाषण में महात्मा गांधी ने कहा था कि ''जब हमारे मंदिरों की दशा इतनी खराब है तो हमारे स्वराज की दशा कैसी होगी? हम लोग जब अपने पवित्र काशी विश्वनाथ मंदिर समेत इस काशी नगर को स्वच्छ और सुन्दर नहीं रख सकते तो फिर हम अपने स्वराज को कैसा रूप देंगे?...जिस जगह पर लोग ध्यान और शान्ति के लिए आते हैं, वहीं से ध्यान और शान्ति नदारद है। साधारण लोग व्यवस्था की निन्दा के सिवाय आखिर कौन सा संदेश लेकर यहां से लेकर दुनिया में जाएंगे।''

गांधीजी के इन कठोर शब्दों को सुनकर तब पूरी सभा स्तब्ध रह गई। भारत सरकार

"काशी की भूमि और वायुमंडल में मालवीयजी और गांधीजी समेत अनेक महापुरूषों ने जिस परिवर्तन का महास्वप्न देखा था, आज 100 वर्ष बाद वह परिवर्तन मूर्त रूप ले रहा है। वाराणसी के सांसद और देश के प्रधानमंत्री के रूप में नरेंद्र मोदी ने वाराणसी के अस्सी घाट पर स्वच्छता अभियान की जो झाड़ू 2014 में हाथ में ली तो मानो वह काशी करवट का नया अध्याय था। हमारे स्वातंत्र्य नायकों और सामान्य मानव की आंखों में जो सपना तिरता था, उसे उस दिन नई संजीवनी मिली, और जैसे ही 2017 में उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने शपथ ली, पुरातन काशी नई ज्योति से प्रदीप्त हो उठी।"

लेखक संस्कृति पर्व के समूह सम्पादक और सेन्टेनियल चेयर प्रोफेसर, भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी हैं।

और उस समय में वाराणसी की व्यवस्था से जुड़े ब्रिटिश हुकूमत के सभी बड़े अफसरों ने फौरन मौके से चले जाना ही बेहतर समझा। गांधीजी के भाषण पर आयोजन में उपस्थित बड़े बड़े महाराजाओं ने भी आपत्ति उठाई क्योंकि गांधी जी ने उनकी भूमिका को भी सवालों में घेरा था। स्वयं श्रीमती एनी बेसेंट को आगे आकर गांधीजी को रोकना-टोकना पड़ा।

काशी की भूमि और वायुमंडल में मालवीयजी और गांधीजी समेत अनेक महापुरूषों ने जिस परिवर्तन का महास्वप्न देखा था, आज 100 वर्ष बाद वह परिवर्तन मूर्त रूप ले रहा है। वाराणसी के सांसद और देश के प्रधानमंत्री के रूप में नरेंद्र मोदी ने वाराणसी के अस्सी घाट पर स्वच्छता अभियान की जो झाड़ू 2014 में हाथ में ली तो मानो वह काशी करवट का नया अध्याय था। हमारे स्वातंत्र्य नायकों और सामान्य मानव की आंखों में जो सपना तिरता था, उसे उस दिन नई संजीवनी मिली, और जैसे ही 2017 में उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने शपथ ली, पुरातन काशी नई ज्योति से प्रदीप्त हो उठी।

जिस परिसर को देखकर गांधीजी विक्षुब्ध हो गए थे, वही काशी विश्वनाथ मंदिर का परिसर काशी की गरिमा के अनुरूप सज-संवर उठा है। पुरानी नींव पर नये निर्माण के प्रकट रूप को जो भी देखता है, दांतो तले उंगली दबा लेता है। आंखों को सहसा भरोसा नहीं होता कि क्या यह वही काशीऔर विश्वनाथ जी का मंदिर परिसर है?

कहते हैं कि काशी के महाश्मशान पर स्वयं बाबा विश्वनाथ ही नश्वर जीवन के कानों में तारक मंत्र देते हैं, उस महाश्मशान की होली के हुरियारों समेत सभी श्रद्धालुओं को भी विश्वनाथ कॉरिडोर ने नई बैठकी और नया मंच दे दिया है। मकराना और चुनार के लाल, गुलाबी पत्थरों से निर्मित नवद्वारों के बीच स्थित भगवान की आकर्षक मनोहारी छविअद्भुत साज-सज्जा, महान स्थापत्य और सुन्दर कला-कलेवर समेटे संपूर्ण काशी को नई पहचान और नया आह्वान दे रही है।

अपने खंडहरों से देवाधिदेव महादेव की आनन्द कानन नगरी का जो अभिनव रूप प्रकट होकर बाहर निकला है कि अद्भुत अतुलनीय आनन्द! अविस्मरणीय अमर अनुभूति! कल-कल बहती पावन गंगा मैया अब अपने किनारे पर बाबा विश्वनाथ की मंगलकारी छवि को नित्य निहार सकती हैं, घंट-घड़ियाल की झंकृत करने वाली मंगलमय ध्वनि का नूतन सत्कार करती हैं। मंदिर परिसर का दायरा अब गंगा किनारे मणिकर्णिका और ललिता घाट तक लगभग साढ़े पांच लाख वर्गफुट में विस्तृतहो गया है। जिस परिसर की गलियों में एक साथ दो लोगों का चलना कठिन था, महादेव के जिस मंदिर के सम्मुख पचास-सौ लोगों के एक साथ खड़े होने की जगह भी नहीं थी, उसी मंदिर परिसर का विस्तार आज 5 लाख वर्गफुट के विशाल काशी विश्वनाथ धाम के रूप में हो चुका है जहां दो लाख से ज्यादा लोग एक परिसर में एक साथ खड़े होकर काशी की चिर पुरातन और नित नवीन होती आध्यात्मिक भाव धारा में स्नान कर सकेंगे। विश्वनाथ धाम काएक किनारा अब सीधे मां गंगा के कल-कल प्रवाह को स्पर्श करने लगा है जिसके कारण अविनाशी काशी के अधिपति भूतभावन भगवान बाबा विश्वनाथ शंकर के ज्योतिर्लिंग के दिव्य दर्शनों की छटा ही बदल गई है। कहते हैं कि काशी के महाश्मशान पर स्वयं बाबा विश्वनाथ ही नश्वर जीवन के कानों

में तारक मंत्र देते हैं, उस महाश्मशान की होली के हुरियारों समेत सभी श्रद्धालुओं को भी विश्वनाथ कॉरिडोर ने नई बैठकी और नया मंच दे दिया है। मकराना और चुनार के लाल, गुलाबी पत्थरों से निर्मित नवद्वारों के बीच स्थित भगवान की आकर्षक मनोहारी छविअद्भुत साज-सज्जा, महान स्थापत्य और सुन्दर कला-कलेवर समेटे संपूर्ण काशी को नई पहचान और नया आह्वान दे रही है। अपनी पूर्णता और भव्यता के साथ भारत के सर्वाधिक सुन्दर और सुव्यवस्थित केंद्रों में गिने जा रहेआध्यात्मिक और सांस्कृतिक धाम के रूप में विश्वनाथ मंदिर परिसर नया आकार ले चुका है। दूसरी ओर काशी के कोतवाल कालभैरों मंदिर के चारों ओर भी कॉरिडोर परियोजना साकार हो रही है ताकि भक्तजन सीधे कोतवाल के दर्शन कर भगवान तक पहुंच सकें। कालभैरो मंदिर के समीप स्थित टाउन हाल के विकास पर भी तेजी से काम हो रहा है ताकि इसे शहर के सबसे आकर्षक व्यवसायिक केंद्र के रूप में विकसित किया जा सके।

बेतरतीब बिजली के तारों से पटे मार्ग अब खुली हवा में सांस ले रहे हैं, जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की वह सारे कार्य काशी में तेजी से सम्पन्न हो चले हैं क्योंकि स्वयं मां गंगा ने अपने जल से अपने पुत्र प्रतिनिधि का प्रधानमंत्री पद पर जलाभिषेक कर दिया तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के योग्यतम मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के दिन-रात अनथक अविराम प्रवास ने काशी में मातहत सरकारी विभागों को एक मिनट भी चैन की सांस नहीं लेने दी।

काशी में बह रही विकास की गाथा को लेकर अब कोई शंकित नहीं है। प्रारंभ में कुछ लोगों ने इधर उधर की बातें फैलाकर लोगों को भ्रमित करने का प्रयास किया लेकिन जैसे जैसे काशी की विकास परियोजनाएं परवान चढ़ने लगीं, वैसे वैसे ही लोगों की अनुभूति साक्षात प्रकट होने लगी कि काशी विश्वनाथ मंदिर के कलेवर के साथ काशी नगर के कायाकल्प का यह महाअभियान परमात्मा प्रेरित है। जिसे लोग असंभव मान बैठे थे, अब सब संभव हो गया है। गलियों के दशकों पुराने सीवर अब साफ हो चले हैं, काशी विरासत की नगरी है तो गंगा किनारे प्राचीन घाटों से लेकर अध्यात्म और सत्संग से गुलजार रहने वाली गलियों में भी स्वच्छता अभियान का असर अब साफ दिखता है। चुनार के लाल पत्थरों से गलियों का कायाकल्प यूं हुआ है मानो नई नवेली दुल्हन सजधजकर अपनी नियति से निर्धारित भेंट की प्रतीक्षा कर रही है। 2014 और 2017 में भारत और उत्तर प्रदेश की जनता ने जिस विशाल जनमत के द्वारा राजनीतिक परिवर्तन के नए युग का सूत्रपात किया, उसी का परिणाम है कि भारत किंवा संसार की सबसे पुरातन नगरी काशी की सड़कों और वीथिकाओं के सम्मुख आकाश में पसरी सारी कालिमा भी मिट गई है। बेतरतीब बिजली के तारों से पटे मार्ग अब खुली हवा में सांस ले रहे हैं, जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की वह सारे कार्य काशी में तेजी से सम्पन्न हो चले हैं क्योंकि स्वयं मां गंगा ने अपने जल से अपने पुत्र प्रतिनिधि का प्रधानमंत्री पद पर जलाभिषेक कर दिया तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के योग्यतम मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के दिन-रात अनथक अविराम प्रवास ने काशी में मातहत सरकारी विभागों को एक मिनट भी चैन की सांस नहीं लेने दी। नतीजा ये है जिस कार्य को असंभव मानकर दशकों से टाला गया था, वो बिजली, टेलीफोन, केबल समेत तारों के सारे जंजाल अब पुरातन नगरी में भूमिगत हैं। पूरे नगर में दोपहिया और चारपहिया वाहनों की पार्किंग के लिए चुने

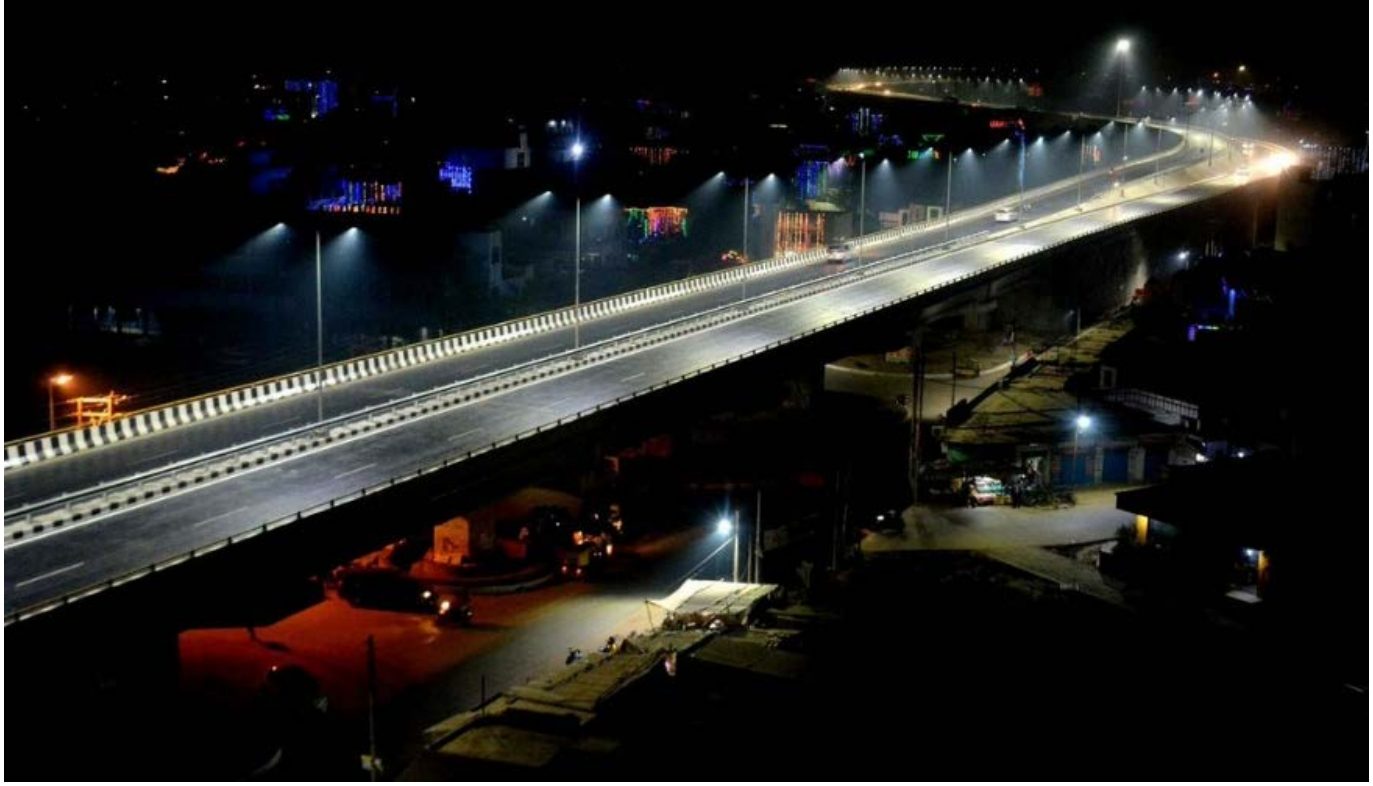

हुए स्थानों पर बहुमंजिला इमारतें तैयार हैं जहां लिफ्ट के जरिए गाड़ियों को अनेक मंजिलों तक ले जाया जा रहा है।

काशी से संबंध रखने वाले किसी भी यात्री, श्रद्धालु और नगरवासी से पूछो तो हर कोई बोल पड़ता है कि एक समय था कि लाल बहादुर शास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट से वाराणसी शहर की ओर रुख करते ही काशी दर्शन का सारा उत्साह बिगड़ने लगता था। लेकिन अब एयरपोर्ट से काशी का यात्रा बेहद सुगम और सुहावनी हो चुकी है। मात्र 20 मिनट में फर्राटा भरती गाड़ियां अनेक ऊपरिगामी सेतु से होते हुए विश्वनाथ धाम तक पहुंचने लगी हैं। यही परिवर्तन वाराणसी के ऐतिहासिक रेलवे स्टेशन पर भी देखने को मिल रहा है जहां ऊपरिगामी सेतु का काम पूर्ण होते ही घंटों जाम में फंसी रहने वाले दैनिक यात्रियों ने राहत की सांस ली है। सारनाथ के पास आशापुर रेलवे क्रॉसिंग पर उत्तर प्रदेश सेतु निगम की ओर से बेहद कम समय में निर्मित सेतु ने भी ट्रैफिक समस्या को नियंत्रित किया है तो वरुणा नदी पर अनेक नए पुलों के निर्माण, वाराणसी-प्रयागराज राष्ट्रीय राजमार्ग के विस्तारीकरण, वाराणसी-जौनपुर, वाराणसी-गाजीपुर राष्ट्रीय राजमार्ग और वाराणसी के चारों ओर शानदार चमकते सनसनाते रिंग रोड ने भी वाराणसी के बाहरी ग्रामीण इलाकों में भी बुनियादी ढांचे के विकास के महानतम युग का सूत्रपात कर दिया है। योगीराज में 24 घंटे चकाचक बिजली की उपलब्धता ने ग्रामों में नई क्रांति की बुनियाद रख दी है जिसमें सामान्य जन को अपनी पीढ़ियों का सुनहला भविष्य साफ दिखने लगा है।

काशी धर्म-अध्यात्म और परंपरा के साथ कला-संस्कृति-शिल्प-हुनर का भी शहर है। इसकी सदियों पुरानी धरोहरों को सुरक्षित रखने, उसे नए नवेले तरीके से युवा पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए रुद्राक्ष कन्वेंशन सेंटर का निर्माण काशी के सांस्कृतिक विकास में मील का पत्थर माना जा रहा है। जापान के सौजन्य से 186 करोड़ रूपये में इसका निर्माण पूर्ण हो चुका है। प्रधानमंत्री उत्सवी माहौल में इसका भव्य लोकार्पण भी कर चुके हैं। हजारों लोग एक साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों, कला प्रदर्शनी, नृत्य-नाट्य आदि का उत्सवी आनन्द यहां लेने लगे हैं। इसके विशाल सभागार में 1500 से ज्यादा लोग एक साथ बैठ सकते हैं। शिवलिंग की आकृति में भव्यतम निर्माण के साथ काशी की सांस्कृतिक धड़कन के रूप में रूद्राक्ष अब नूतन हस्ताक्षर है।

काशी में सभ्यता मूलक विमर्श की परंपरा भी प्राचीन है। भारत के समस्त मत-संप्रदायों की यह सर्वप्रिय भूमि है। भक्ति, ज्ञान और कर्म की समवेत उपासना यहां के कण-कण में प्रकट

भितरी विष्णु मंदिर के पुरावशेषों में दीपावली सजाते ग्रामीण युवक

अद्भुत संयोग की बात है कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने चौथी सदी ईस्वी सन में श्रीरामजन्म भूमि मंदिर, अयोध्या का भी जीर्णोद्धार किया था। आज जबकि अयोध्या के खंडहरों से परमात्मा की लीला जीवित-जागृत रूप में पुनः प्रकट हो रही तो स्कन्दगुप्त की स्मृति का जनमन के बीच अचानक पुनर्जागृत हो उठना मानो अतीत की ऐतिहासिक स्वर्णयुगीन सांस्कृतिक धारा के पुनर्जीवित हो जाने का ही जीवंत प्रमाण है। स्कन्द गुप्त विक्रमादित्य के द्वारा निर्मित सैदपुर-भितरी के उस महान पुरातात्विक महत्व के विष्णु मंदिर खंडहरों में भी ग्रामीण लोग आशा और विश्वास का दीपक दीपावली की रात में झिलमिल जगमग जलाते हैं, जहां अक्सर देसी-विदेशी विद्वानों का जमावड़ा लगता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारत भुवन के आंगन में चैतन्यता भर रहा नया सवेरा सचमुच दस्तक दे रहा है।

होती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भारत की ज्ञान परंपरा को उसके वास्तविक रूप में प्रकट करने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारत अध्ययन केंद्र के निर्माण की प्रेरणा दी वहीं, मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की प्रेरणा से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वैदिक विज्ञान केंद्र की भव्य स्थापना का कार्य पूर्ण हो चुका है।

काशी क्षेत्र में बदलाव की यह आहट केवल नगर केंद्रित नहीं है। दूर ग्रामीण अंचल में गंगा-गोमती के संगम पर बसे कैथी मार्कण्डेय महादेव में नया आह्वान अंगड़ाई ले चला है। गंगा-गोमती संगम घाट जो सदियों से सूने थे, आज वहां लाल पत्थरों पर शिल्प और सौन्दर्य की नई इबारत कारीगरों ने गढ़ दी है। जाड़े के दिनों में यहां साइबेरियाई पक्षियों का तांता लग जाता है। पहले व्यवस्था न होने से संगम तट तक इने-गिने लोग ही आ पाते थे लेकिन अब यहां संगम तट पर पर्यटन और तीर्थाटन के लिए लोगों का हुजूम उमड़ता है।

और जिस जगह पर कोई कभी नहीं जाता था, वाराणसी के समीप स्थित सैदपुर-भितरी का इलाका भी अब अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर सदियों के बाद नई पहचान लेकर उभर आया है। ईस्वी सन् 453 में जिस महानतम केंद्र से भारत के युवा सैन्य अधिपति स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने संसार की सबसे बर्बर आक्रांता हूण जाति के सफाए का संकल्प लिया था, और जिस भितरी में उस महान विजय के उपलक्ष्य में विजय स्तंभ, शिलालेख समेत धनुर्धारी भगवान विष्णु अर्थात प्रभु श्रीराम के गगन चूमते

महान मंदिर की स्थापना का संकल्प पूर्ण किया था। अद्भुत संयोग की बात है कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने चौथी सदी ईस्वी सन में श्रीरामजन्म भूमि मंदिर, अयोध्या का भी जीर्णोद्धार किया था। आज जबकि अयोध्या के खंडहरों से परमात्मा की लीला जीवित-जागृत रूप में पुनः प्रकट हो रही तो स्कन्दगुप्त की स्मृति का जनमन के बीच अचानक पुनर्जागृत हो उठना मानो अतीत की ऐतिहासिक स्वर्णयुगीन सांस्कृतिक धारा के पुनर्जीवित हो जाने का ही जीवंत प्रमाण है। स्कन्द गुप्त विक्रमादित्य के द्वारा निर्मित सैदपुर-भितरी के उस महान पुरातात्विक महत्व के विष्णु मंदिर खंडहरों में भी ग्रामीण लोग आशा और विश्वास का दीपक दीपावली की रात में झिलमिल जगमग जलाते हैं, जहां अक्सर देसी-विदेशी विद्वानों का जमावड़ा लगता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारत भुवन के आंगन में चैतन्यता भर रहा नया सवेरा सचमुच दस्तक दे रहा है। जिस देश और प्रदेश में राजनीति जब समाज को साथ लेकर उसके गौरव स्थानों, श्रद्धा केंद्रों, उसके समूचे सत्य इतिहास और महानायकों पर चढ़ी धूल की परत झाड़ने और उसे नए सिरे से सजाने-संवारने निकल पड़ी हो तो फिर संसार में भला कौन सी शक्ति है जो भारत के बढ़ते क़दम रोक सके।

महान वैज्ञानिक शान्ति स्वरूप भटनागर ने जब पहली बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर को देखा तो वह पैदल ही पूरी यूनिवर्सिटी के भ्रमण पर निकल पड़े, और तब जो गीत उनकी जुबां पर आकर गुनगुनाने लगा वही मालवीय जी की दृष्टि पाकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का ऐतिहासिक कुलगीत बन गया। उसी कुलगीत की एक पंक्ति मानो काशी में परिवर्तन के इस महान पर्व को आवाज देती सार्थक प्रतीत होती है कि -

ये तीनों लोकों से न्यारी काशी, सुज्ञान, धर्म और सत्यराशी।
बसी है गंगा के रम्य तट पर, ये सर्वविद्या की राजधानी।
प्रकट हुई है नवीन होकर यह कर्मवीरों की राजधानी।

सचमुच, वाराणसी नगरीअपने कर्मवीर नायकों की मदद से पुनः संसार पुरुष के मस्तक का श्रृंगार बन गई है। भारत की सांस्कृतिक राजधानी होने का उसका अतीत का गौरव उसे मानो वापस मिल गया है। काशी का पुनरोद्धार इस बात का जीवंत साक्षी है कि आतंक, असहिष्णुता और अनाचार के बूते भारत के सनातनी समाज और उसकी धर्म और संस्कृति को मिटाया नहीं जा सकता। काशी उन सभी के स्वागत के लिए अभिनव तीर्थ बनकर पुनः तैयार खड़ी है जो इसके आंगन में ज्ञान, भक्ति और अध्यात्म की ज्योति के प्रकाश में विश्व मानवता के सुन्दर स्वर्णिम भविष्य की रूपरेखा गढ़ने की आकांक्षा पालकर आगे बढ़ रहे हैं।

Advaita Vendanta

A path of universal peace and happiness

Prof. Sabhajeet Mishra

Kant made a distinction between transcendental knowledge and transcendent reality. Transcendental knowledge is the knowledge of the apriori conditions of knowledge. But the knowledge born of these apriori conditions of knowledge (i.e. pure forms of understanding and pure forms of intitutions) is applicable and valid only in respect of the phenomenal world. Transcendental knowledge therefore according to Kant is nothing but the critical awareness of human reason of its application, validity and limits.

This self-consciousness of reason provides the philosophical justification for the foundations of scientific knowledge on the one hand and on the other hand it makes the transcendent reality secure against the onslaughts of skeptical understanding. By restricting knowledge to the realm of the empirical and phenomenal Kant denied the possibility of metaphysical knowledge without denying the value of metaphysics and reality of the transcendent entitiles. [1]

However, Kant's caution in regard to the application of the pure concepts of understanding to the noumenal was completely disregarded by Hegel who equated the real with the rational and believed that the laws of logic were also the laws of the spirit. Thus arose an imposing superstructure of metaphysical knowledge in the Hegelian philosophy. The subjective and interpretative categories of Kant became objective and constitutive categories. The given manifold was conceived as an 'other' of the mind created by the mind itself.

Kant had silenced reason so that he could make room for faith regarding the noumenal realities. He had to silence reason and limit all thereoretical knowledge to the realm of the phenomenal because no valid knowledge was possible in the absence of the manifold given through int/tution. All efforts of reason to produce a science of the noumenal realities are productive of transcendental illusion because such a science is based on pure concepts to which no corresponding intitutions are available. The logical positivists

> “Philosophy is thus a mere caretaker of science. All utterances of meaningful form according to the logical positivists are public utterances. The private, the subjective and symbolic gestures fall outside the field of meaningful discourse as the principle of verification is inapplicable to them. The logical positivist is a mere 'logician' having no concern with the bigger, intimate and personal questions of life.”

Professor & Ex Head
Deptt. of Philosophy
Ex Pro VC
DDU Gorakhpur University

caught hold of this idea and converted it into the essential condition of the possibility of a meaningful discourse. Knowledge means any communication in the form of subject-predicate statement. Subject-predicate statements are meaningful only if either (a) the predicate states what is already unexplicitly stated in the subject itself. These are analytical statement which are tautological in character. Or, (b) the predicate says something about the subject which can be empirically verified. These are the statements of natural sciences. Metaphysical statements come under neither of these categories and so they are meaningless or nonsensical. Metaphysical knowledge only appears to be knowledge; it is not genuine knowledge. Thus the Kantian condition of the possibility of genuine scientific knowledge was converted by the logical positivists into an instrument of the refutation of all metaphysics much against the intentions of Kant. Kant, it must be noted, had rejected dogmatic metaphysics so that genuine metaphysics could be made secure.

(ii)

Logical positivists' rejection of metaphysics has its reason in their motive of philosophizing. The motive, in its simplest form, is clarification of language. Philosopher is primarily a logician whose only function is to determine the precise meaning of words so that meaningless words could be eliminated from any meaningful discourse. Natural sciences are the realm of meaningful discourse and the function of philosophy is to place at their disposal a list of words which is meaningful and unambiguous.

Philosophy is thus a mere caretaker of science. All utterances of meaningful form according to the logical positivists are public utterances. The private, the subjective and symbolic gestures fall outside the field of meaningful discourse as the principle of verification is inapplicable to them. The logical positivist is a mere 'logician' having no concern with the bigger, intimate and personal questions of life.

In opposition to Hegel as well as to positivism,

phenomenlogical-existentialism believes that the public world of the natural sciences is far removed from reality because the status of the truth of the public and the natural world is unexamined and unfounded. It needs examination and foundation. But before it can be examined and founded, the natural attitude must be rejected. A typical example of the naturalism is to be found in the empirical tradition from Locke to Russell that believes that human consciousness is a 'container' of the already present sense-data. The function of philosophy, as phenomenology perceives, is to rid the mind of such gratuitous assumptions and discover through the methods of epoche and transcendental reductions the 'originary and foundational' ego who is responsible for the structure of the world of our perception. Heideggar's exasperation against the natural, the scientific and the public is most forcefully expressed in his question 'why are there things rather nothing?' We are so immersed in the things that we have forgotten to raise question about Being. Forgottenness of Being, according to Heideggar, is the mark of insensitive philosophical consciousness .

“A typical example of the naturalism is to be found in the empirical tradition from Locke to Russell that believes that human consciousness is a 'container' of the already present sense-data. The function of philosophy, as phenomenology perceives, is to rid the mind of such gratuitous assumptions and discover through the methods of epoche and transcendental reductions the 'originary and foundational' ego who is responsible for the structure of the world of our perception. Heideggar's exasperation against the natural, the scientific and the public is most forcefully expressed in his question 'why are there things rather nothing?' We are so immersed in the things that we have forgotten to raise question about Being.”

The logical, the explicit, the definite, therefore, is not the primary truth ; it is perceived as truth under the spell of the natural attitude or in a philosophically insensitive attitude. A similar thing was said by Samkaracarya several hundred years ago. In the adhyasabhasya he declares that all our life and conduct are characterized by ignorance.2 Pramana-prameya vyavahara is the commonly accepted mode of life and thought and this is what Husserl possibly meant by the natural attitude. The consciousness glued to the conditions of pramana-prameya vyavahara, maintains Samkaracarya, is unphilosophical and uncritical because such a consciousness lacks self awareness.

(iii)

Consciousness, only when it becomes reflective

and critical, is capable of raising genuine philosophicals problems. Only then it raises the questions of freedom, of value and beauty; only then it raises the questions of ultimate reality and truth, of human choices and decisions, of human failures, despairs and disappointments, of human bondage and liberation. Logical positivism and its versions of analysis and language philosophy shut off these questions from the inquiring philosophical consciousness and deal only with what is commonplace and superficial.

Logical positivism, therefore, cannot be an alternative to metaphysics in general and Indian and Advaitic metaphysics in particular because (i) its refutation of metaphysics does not and can not apply to the advaitic metaphysics and (ii) unconcerned as it is with the larger and real problems of life, it can not serve as a basis of values and culture which the advaitic metaphysics can.

Cognition for the logical positivists, as already pointed out, is meaningful only if it knows an object in such a manner that the knowledge of the object meant by it can be actually or possibly verified in sense-experience. This verification formula insists on the empirical presentation of the meant object. The advaitic conception of knowledge is very comprehensive and also different from the positivistic one. Knowledge, according to the advaitic, is neither necessarily knowledge of something given in sense experiences (a condition insisted on by the positivists) nor it is an awareness of something literally meant (a condition insisted on by Kant). Ultimately it is the Atman that is to be known and the knowledge of the Atman is the highest and the founational knowledge because after having known the Atman nothing else remains to be known and it is because of the knowledge of the Atman that everything else becomes known.3 The Atman is not an object and therefore its knowledge transcends the limit of the verification principle which insists that knowledge can be verified only if its object can be presented before the scrutiny of verification principle like a natural object or event happening or supposed to have happened in space and time. The Atman can never be known as an object yet it can never be said that the Atman is unknowable.

The advaitic conception of knowledge is very comprehensive and also different from the positivistic one. Knowledge, according to the advaitic, is neither necessarily knowledge of something given in sense experiences (a condition insisted on by the positivists) nor it is an awareness of something literally meant (a condition insisted on by Kant).

Samakaracarya authoritatively established the knowability of the Atman in his analysis of illusion and error and also at several places. It is in the unreflective attitude that 'every thing, including the subject, is sought to be known as an object. In the reflective attitude there is necessarily the consciousness of reality other than the one that is objective'.4 This reality is none olher than the Atman which is the undeniable implicate of all experience in the reflective consciousness. When we come across the unreality of the objective and the other to consciousness, we are referred back to the reality of the Atman as a being which is known as the only reality and knowledge par excellence. Here is a unique definition of knowledge. Knowledge in the objective attitude is subject to verification but the objective attitude is the breeding place for illusory knowledge because it is here that 'I' and 'thou' which are mutually opposed to each other are identified with each other. Genuine knowledge demands the suspension or transcendence of the objective attitude. On the reflective or critical plane, then, knowledge has to be 'understood as an unmeant and unmeanable content.' The unmeanabity of a

content means its unpresentability in experience; however it does not mean its unknowability an any manner whatsoever.5

It is in the light of this conception of knowledge that the upanisadic mahavakyas have meaning. Mahavakyas like 'tattvamasi' are neither empirical propositions nor are they methematical propositions. But they are meaningful propositions for a man seeking knowledge and freedom. Such statements are not to be understood as statements of ordinary experience or logic in which a content is presented as another to the knowing consciousness. What these statements indicate is beyond the Spatio-temporal limit and also beyond the representational frame of knowledge-situation. They do not state a knowledgesituation which can be subjected to verification in sensueous experience. They are also not verbal or taulogous statemen ts . The significance of these statements is 'gestural'6 . The contents of these propositions 'mark on an advancement in knowledge'. They are illuminations in which ignorance and error are sublated and the fulness of immediate experience is realized as having been already possessed. That the phenomenon of linguistic expression means much more than the written and spoken words of expression has been very lucidly and forcefully pointed out by Husserl, Heidegger, Sartre and Merleau-Ponty in the twentieth century. Logical analysis 'algebrizes' the meaning of words. It takes words as simple and atomic whose meanings can be exhaustively and adequately defined by use as 'p' 's' 'q' 's' in an algebrized syllogism. But words are world-phenomena. Man's being is the primary fact. Knowledge comes after being and expression follows knowledge. 7

The significance of these statements is 'gestural'6 . The contents of these propositions 'mark on an advancement in knowledge'. They are illuminations in which ignorance and error are sublated and the fulness of immediate experience is realized as having been already possessed. That the phenomenon of linguistic expression means much more than the written and spoken words of expression has been very lucidly and forcefully pointed out by Husserl, Heidegger, Sartre and Merleau-Ponty in the twentieth century.

(iv)

The sumum bonum of the Advaitic metaphysics is freedomthe spiritual freedom of man. The essence of this freedom 'consists in the inner realization of the unity of all beings and utter negation of all egoity. There are freedoms of other sorts also, e.g., freedom of speach, freedom of association, freedom of worship and freedom from want etc. These freedoms provide partial satisfaction to man but they are also likely to be abused. In order to attain freedom from want the stronger men and nations have not only exploited weaker men and nations, they have exploited the nature around us and have thus created acute problems of environmental imbalance. The secular notion of freedom, therefore, unless grounded in spiritual freedom, can lead to disastrous consequences and can create hatred between man and man, between nation and nation. Science, at whose service positivism pledges philosophy to place, has done a lot to make human life comfortable. But the questions remain to be asked: has it made human life happy? Has it been able to eliminate the possibility of war? Has it been able to provide a stable and sound foundation for values and a worldculture? It needs no proof to say that the answer to these questions is in the negative. No doubt, the discoveries of science and the resultant technologies have reduced the distances of the physical world but the distances in the human world have increased. Man, particularly the western man, whose mind is caught in the positivistic frame has attained near mastery

over nature but has no control over himself. His ability to control situations involving physical forces is matched by his corresponding inability to control situations involving human elements. Thus 'we have gained the world but have lost our soul'8. The material culture supported by positivism cannot get us out of the predicament. Material affluence by itself cannot result in the good of humanity because the basic principle underlying it is vicious. If material good of earthly life were the only good one would try to secure them as much as possible and by any means, fair or foul. The tendency to possess more and more cannot be eliminated though it can be kept under control by social and moral rules. The tendency can be conquered only by realizing the ultimate falsity of the earthly and transecending the standpoint of ego.9 This is possible in the absolutism of the Advaitic metaphysics. It is the dualistic attitude which gives rise to difference and antagonisms; in non-dualistic attitude one sees the essential unity of all mankind. In the non-dualistic consciousness all the differences of ideologies and religions are annulled. On this point we have the authority of the Lord himself who declares that people ultimately attain me no matter what is the path they follow.10 This metaphysical knowledge may be mysterious, unclear and inarticulate but in it lies a hope for a happy, harmonious and peaceful world. This knowledge is not easy to attain. One may have to wait for ones whole life for this realization. But there is glory and hope even in this waiting. In an age of instant culture we have become impatient to wait. But it is better to wait in order to realize the fuller and deeper meaning of our being rather than let our lives be pushed along in a thoughtless, unreflective and medicore manner.

What we have said above is not because of an unquestioning reverence to the vedic tradition. Impassionate and sensitive reflection on the nature of philosophy has led many a thinkers to a similar conclusion. Heidegger, for instance, who has no burden of tradition on his mind, conceives philosophy as an analysis of man's spiritual life which is marked by mystery and ambiguity. This makes the task of philosophy difficult and untimely in 'an age which regards real as only what goes fast and can be clutched with both hands, which looks on questioning as remote from reality and as something that does nol pay, whose benefits cannot be numbered'. But, he further remarkds, 'the essential is nol number; the essential is the

right time, i.e. the right moment, the right perserverence'.

And, finally he sumps up the essence of philosophical inquiry in the words of the poet Holderlin :

'The mindful God abhors untimely growth'.

The upanisadic wisdom contained in the parables of Naciketa and Yama, Indra, Virocana and Prajapati, Maitreyi, Katyayini and Yajnavalkya etc. has underscored the same essence of waiting and preference of the ultimate over the instant.

References :

1 . Kant, Critique of Pure Reason (trans. N.K.Smith), London: Mac Millan & Co. Ltd., 1958, BXXV.

2. adhyasam puraskrtya sarve pramanprameyavyavahara laukika vaidikasca pravrttah. Brahmasutra Samkarabhasya 1.1

3. Yajjanatava neh bhuyonyad jnatavxmavasisyate. Bhagawadgita, 7.2

4. Roy, S.S., The Heritage of Samkara, Allahabad: Udayan Publications, 1965, p.171.

5. Bhattacarya, K.C., The concept of Philosophy in the Studies in Philosophy, Calcutta:Progressive Publications, 1958, Vol.II, p.lol ff., also see, The heritage of Samkara, p.179.

6. The heritage of Samkara, p. 181.

7. Thevenaz, What is Phenomenology? Chicago:Quadrangle Books, inc. 1962, p.33

8. Murti, T.R.V., The Central Philosophy of Buddhism, London: George Allen and Union Ltd., 1960, p.338.

9. Ibid. p. 339.

10. Bhagawadgita, 4 .11

Heidegger, Martin, An Introduction to Metaphysics (Trans. Ralph Manheim), New York: Doubledey & Co., 1959, p. 172.

'ऊं नूतन जलधर रुच, गोप वधूतूलचौराय नमो, तस्मै श्री कृष्णाय'

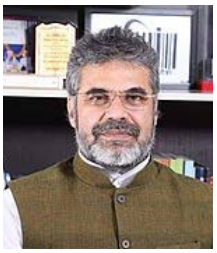

प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल

नए बादलों की कांति से समन्वित सांवले श्याम, घनश्याम, नन्द के आनंद श्याम, असुर दल निकंदन श्याम, कंशारी श्याम, युग प्रबोधक श्याम, सत्य से धर्म की ओर मानव को प्रब्रजित करने वाले श्याम, जिनके बारे में कहा जाता है- 'कृष्णस्तुभगवानस्वयम्'। भारत में अवतारवाद स्वीकृत है। वेदों से लेकर समस्त पुराणों तक अवतार वाद का एक विस्तृत उपवृहंण है। चाहे तो हम उसकी व्याख्या डार्विन के विकासवाद के आलोक में भी कर सकते हैं। जल से प्रारम्भ होने वाला जीवन अंत में बुद्ध की शांति में अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। इसमें जैविक एवं साभ्यतिक विकास को देखा जा सकता है पर सनातन परंपरा यह मानती है कि कृष्ण का अवतार ईश्वर का सम्पूर्ण कलाओं के साथ हुआ अवतार है।

> **अंधेरे में डूब रहे आर्तजन को प्रकाश देने के लिए कृष्ण अंधेरे में जन्म लेते हैं। वे घनश्याम हैं, नील-श्याम हैं, नील-सरोरुह हैं। ऐसे नीले श्याम भी रात के अँधेरे में आते हैं तथा जिसको मुक्त कराना है उसी को अपने रक्षण की प्रतिज्ञा कराते हैं। जिसकी बेड़ियाँ काटनी हैं उसको अपने को ही बचाने का निर्देश करते हैं, जो त्राता है, तारणहार है वह अपने तारण के लिए निर्देश करता है। क्योंकि जो स्वयं में संपूर्ण ईश्वर है वह धर्मरूप है और धर्म रक्षा तो करता है लेकिन उसकी रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है- धर्मो रक्षति रक्षतः।**

कुलपति
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सनातन परंपरा में ईश्वर वह है जो निमित्त कारण है और उपादान कारण भी। जो सृष्टि कर्ता है, वही सृष्टि के रूप में अपने आप को अभिव्यक्त भी करता है और अनंतर में स्वयं में विलय कर लेता है, अंतर्निहित कर लेता है। यह तो हो गयी दार्शनिक बात किन्तु कृष्ण केवल दार्शनिक दृष्टि से ज्ञेय नहीं हैं। केवल तत्व के जानने वाले ही कृष्ण को जान सकते हैं ऐसा नहीं है। उद्धव का उदाहरण लें जहां उद्धव को गोपियों ने समझाया था कि उनका कृष्ण को पाने रास्ता ज्ञान से नहीं भक्ति से होकर जाता है। ईश्वर प्रेमाभक्ति से रीझता है। प्रेममय भक्ति, भक्त को ईश्वरमय करती है। इसमें मन को 'अमन' नहीं करना होता है इसलिए इसमें समाधि की आवश्यकता नहीं है। यही प्रेमाभक्ति कृष्ण की लीला का नवनीत है। इसी कारण कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन अद्भुत है। कृष्ण के जन्म से लेकर उनके तिरोधान तक की जो कथा है वह विलक्षण है, अलौकिक है, माधुर्य से परिपूर्ण है, साथ ही रहस्य और रोमांच से परिपूर्ण कथा है पर सहज है। यह प्रेमाभक्ति से पायी जा सकती है। इसमें विविध प्रकार की विसंगतियों से मनुष्य के मन को अतिक्रांत करता हुआ विसंगतियों से पार पाता हुआ लेकिन विसंगतियों के बीच संगति की तलाश करता हुआ जीवन है। हम सब जानते है कि कृष्ण जन्म कहाँ हुआ था। उनका जन्म बन्धन में होता है। जेल में जन्म अर्थात बंधन में जन्म। बेड़ियों में जकड़ा हुआ जो जीव है उसकी मुक्ति के लिए कृष्ण का जन्म होता है। वे बेड़ियों में जकड़े हुए वसुदेव जैसे चेतन जीव की मुक्ति के लिए प्रकट होते हैं। वे प्रकट होते हैं मथुरा में राक्षसी सभ्यता और संस्कृति रूपी बेड़ियों में जकड़े हुए जन को मुक्त करने के लिए। मुक्ति का वह संग्राम अपनी परिणति को प्राप्त हो इसलिए कृष्ण अँधेरे में जन्म लेते हैं। अंधेरे में डूब रहे आर्तजन को प्रकाश देने के लिए कृष्ण अंधेरे में जन्म लेते हैं। वे घनश्याम हैं, नील-श्याम हैं, नील-सरोरुह हैं। ऐसे नीले श्याम भी रात के अँधेरे में आते हैं तथा जिसको मुक्त कराना है उसी को अपने रक्षण की प्रतिज्ञा कराते हैं। जिसकी बेड़ियाँ काटनी हैं उसको अपने को ही बचाने का निर्देश करते हैं, जो त्राता है,

तारणहार है वह अपने तारण के लिए निर्देश करता है। क्योंकि जो स्वयं में संपूर्ण ईश्वर है वह धर्मरूप है और धर्म रक्षा तो करता है लेकिन उसकी रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है- धर्मो रक्षति रक्षतः। धर्म की रक्षा धारण करने में है इसलिए वसुदेव कृष्ण को अपने सर पर धारण कर लेते हैं उन्हें लेकर नंद के घर की ओर निकल पड़ते हैं। इस तरह वसुदेव उन्हें लेकर नन्द के घर की ओर निकल पड़ते हैं। मार्ग में अलौकिक घटनाएं घटती है- मूसलाधार बरसात होती है और रात का अन्धेरा है। इस बीच यमुना का जलस्तर विकराल रूप धारण करने लगता है। वसुदेव नदी पार करना चाहते हैं। यमुना को रास्ता देना चाहिए लेकिन यमुना वसुदेव को डुबाने के लिए उफन पड़ती है क्योंकि सूर्य पुत्री यमुना को हजारों वर्षों से यह प्रतीक्षा थी कि कृष्ण आयेंगे तो उसके तट पर क्रीडा करेंगे। उस यमुना के लहरों के किनारे माधुर्य का, जीवन का, शांति का, सुख का संगायन होगा, नर्तन होगा। लेकिन सूर्यपुत्री यमुना अधीरतावश रुक नहीं पाती हैं, सूर्य के तेज के समान बढ़ने लगती हैं, मानो वसुदेव को डूबा ही डालेगी। हजारों वर्षों की प्रतीक्षा कृष्ण के आते ही टूटती हुई दिखाई पड़ती है। श्यामा यमुना घहराती हुई निकल पड़ती हैं। जैसे ही कृष्ण का स्पर्श पाती हैं वसुदेव को रास्ता दे देती हैं। इसके बाद चमत्कारों का क्रम चलने लगता है। छठवें दिन एक राक्षसी का नाश, एक वर्ष में दूसरे राक्षस का नाश, और ग्यारह वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते वह अपनी मां को ब्रह्म विद्या का बोध देते हैं। गोपियों को प्रेमाभक्ति की शिक्षा देते हैं। वे कृष्ण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं जहां हजारों-हजार वर्ष की तपस्या करने वाले योगी-मनीषी-तपस्वी जिस कृष्ण की एक झलक तक नहीं पा सकते हैं, वे गोपियों के लिए सहज हैं सुलभ हैं- ‘ नारद से सुक व्यास रटैंए पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावैं‘ ।

कृष्ण सम्पूर्ण भगवान हैं। राम के रूप में उनको पाना आसान नहीं था। परशुराम के रूप में तो उनको पाया ही नहीं जा सकता था तो फिर नरसिंह, कूर्म, कच्छप इत्यादि अवतारों की बात ही क्या की जाए! कृष्ण वो हैं सम्पूर्ण रूप में आता है, समस्त लीला के साथ आता है, सोलहों कलाओं के साथ आता है, पूर्णिमा के चांद की तरह आता है लेकिन अँधेरे में आता है, वह कृष्ण एक तरफ योगियों के लिए अगम्य हैं, शेष महेश गनेश के लिए अप्राप्य हैं सेस महेसए गनेसए दिनेसए सुरेसहु जाहिं निरन्तर गावैं

जाहि अनादिए अनन्त अखंडए अछेदए अभेद सुवेद बतावैंण् शिव मदारी बन जिसकी छवि देखने आते हैं, हनुमान को अपने डमरू पर नचाते हैं फिर भी नहीं अघाते हैं। वे कृष्ण गोपियों के लिए सुलभ हैं, ग्राम्य बालाओं के लिए सुलभ हैं, जिनको ज्ञान से कुछ पाना नहीं है, जो ब्रह्मवेत्ता उद्धव को डांट सकती हैं- उधो, मन न भए दस बीस। एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस। ये वही श्याम हैं जो आगे चलकर मोह से मुक्ति का उपदेश देते हैं। वे गोपियों को मोह से मुक्त नहीं करते हैं क्योंकि उस मोह में आनंद है। वस्तुतः कृष्ण होना यानी आनंद का सृजन करना है। सम्पूर्ण ब्रह्म होना यानी आनंद का सृजन करना है श्आनंदों ब्रह्मेति व्यजानात श्;तै॰ उ॰ ३।६ द्ध । वे जो सम्पूर्ण आनंदमय हैं, ऐसे मधुसूदन हैं जिनके द्वार पर काल-कराल भी दरबार लगाते हैं। मधुसूदन कृष्ण मधु का कर्षण करते हैं, माधुर्य को बटोरते हैं और बिखेर देते हैं उनके लिए जो उनकी प्रेमाभक्ति में लीन हैं, जिनके लिए वे सामान्य ग्वाले हैं, जिनके लिए वे लुकाठी लेकर गायों के पीछे घूमने वाले हैं। ज्ञानी जन जिस कृष्ण के बारे में यह कहते हैं कि काल-कराल भी जिसकी भृकुटी गति सक उठता और बैठता, सृजन और संहार जिसकी इच्छा मात्र से होता रहता है वह गोपियों के छीके से माखन चुराता है।

कृष्ण का पूरा जीवन अद्भुत है, सहज जीवन में मर्यादाएं कैसे

स्थापित की जा सकती हैं इसको चरितार्थ करने वाले कृष्ण ही हैं। रीति कालीन कविता के कृष्ण की बात छोड़ दें तो उन्हें हम सर्वत्र धर्म की संस्थापना करते हुए पाते हैं। धर्म तो विरोधों का समंजन है। जब तक विरोध समंजित नहीं होता तब तक धर्म नहीं बनता। इसलिए कृष्ण विरोधों का समंजन हैं। तभी तो रणछोड़दास होते हुए भी उस काल के सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं। परशुराम-शिष्य भीष्म जिसे सबसे महान योद्धा मानते हैं, वह कृष्ण है कौन? वही जो कालयवन के डर से मैदान छोड़ रणछोड़दास हो जाता है और रणछोड़दास सम्पूर्ण भारत को जीत लेता है। यह वही कृष्ण हैं जिसे द्वैपायन व्यास 'योगेश्वर' कहते हैं। योगेश्वर भी कैसा? जो गोपियों के साथ रास लीला करता है। जो रासलीला करता है वह योगेश्वर कृष्ण हैं। युद्ध के मैदान से भाग जाने वाला अपने काल खंड का सबसे बड़ा योद्धा है। जो किसी राज्य का अधिपति नहीं है वह राजसूय यज्ञ में प्रथम पूजन का अधिकारी बनता है। जो यह प्रतिज्ञा कर लेता है कि मैं महाभारत संग्राम में शस्त्र नहीं उठाऊंगा वही पांडवों के विजय का मूल कारण माना जाता है। जो महारथियों का महारथी है पर रथ चलाता हुआ दिखाई देता है। जो महासंग्राम में अर्जुन को निष्काम कर्मयोग और मोह से मुक्ति का उपदेश देता है वहीं कृष्ण द्रौपदी को संकट में देखकर अपनी ईश्वरीय मर्यादा को भूलकर कर, कुरुवंश के राजदरबार में अपनी लीला के स्वरूप को विस्मृत कर ईश्वर रूप में प्रकट हो जाता है। कृष्ण वे हैं जो सर्वत्र सहज हैं कहीं चमत्कार नहीं करते किंतु जिसके होने मात्र से चमत्कार हो जाता है, जिसकी मुस्कान पर यशोदा और गोपियाँ रीझती हैं, जिसकी वंशी के तान पर पूरा गोकुल सम्मोहित हो जाता है, नृत्य करता है, जिसके होने मात्र से जरासंध पराजित होता है, जिसको देखने मात्र से शिशुपाल आवेशित हो उठता है, जो विदुर के घर साग खाने के लिए उद्दत दिखाई देता है लेकिन उसी विदुर की सभा में धृतराष्ट्र और कौरवों के समक्ष कह सकता है कि 'हो हिम्मत तो बाँध मुझे'। ये वही कृष्ण हैं जो ओखली से बंध जाता है किन्तु कुरु सेना की जंजीरे उसे छू भी नहीं पाती। इस कृष्ण का अवतार वस्तुतः इन सब चमत्कारों के बीच धर्म की स्थापना के लिए हुआ है। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत् गीता का संगायन युद्ध के क्षेत्र में हुआ है पर धर्म की स्थापना के लिए हुआ है। इस महान काव्य में धर्माभाष की मान्यताओं का ध्वंस करते हुए कृष्ण दिखाई देते हैं। अर्जुन के सवाल, अर्जुन का मोह, अर्जुन के लिए संकट खड़ा करते हैं। अर्जुन के प्रश्न बड़े सीधे और तीखे हैं कियुद्ध होगा , परिजन मारे जायेंगे, स्त्रियाँ दूषित होंगी, वर्णसंकर संतानें पैदा होंगी , पितरों को पिंड नहीं प्राप्त होगा इस प्रकार से धर्म के समक्ष एक संकट खड़ा होता है। वस्तुतः अर्जुन एक महान जातीय संकट का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इसके प्रतिउत्तर में कृष्ण कहते हैं-

कृष्ण वे हैं जो सर्वत्र सहज हैं कहीं चमत्कार नहीं करते किंतु जिसके होने मात्र से चमत्कार हो जाता है, जिसकी मुस्कान पर यशोदा और गोपियाँ रीझती हैं, जिसकी वंशी के तान पर पूरा गोकुल सम्मोहित हो जाता है, नृत्य करता है, जिसके होने मात्र से जरासंध पराजित होता है, जिसको देखने मात्र से शिशुपाल आवेशित हो उठता है, जो विदुर के घर साग खाने के लिए उद्दत दिखाई देता है लेकिन उसी विदुर की सभा में धृतराष्ट्र और कौरवों के समक्ष कह सकता है कि 'हो हिम्मत तो बाँध मुझे'। ये वही कृष्ण हैं जो ओखली से बंध जाता है किन्तु कुरु सेना की जंजीरे उसे छू भी नहीं पाती। इस कृष्ण का अवतार वस्तुतः इन सब चमत्कारों के बीच धर्म की स्थापना के लिए हुआ है।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2/11)।

बात तो तुम विद्वानों वाली कर रहे हो किन्तु तुम चिंता उस पर चिंता प्रकट कर रहे हो जिस पर मूढ़ को भी नहीं सोचना चाहिए। वह कौन है जो जीवित रहा है , इस कुरुक्षेत्र के मैदान में भी वह कौन सा सेनानी है जो जीवित रहेगा, बहुत जन्म तुम्हारे भी व्यतीत हुए हैं और मेरे भी। अंतर इतना है कि मुझे याद है और तुम भूल गए हो। अर्जुन! जब तुमको भी याद आ जाएगा तो तुम भी कृष्ण हो जाओगे। कृष्ण में ही वह क्षमता है जो अपने सा दूसरों को बना सकती हैं, कृष्ण में ही वह क्षमता है जो अपनी यादवी सेना को अर्जुन से परास्त करा सकती हैं , कृष्ण में ही वह क्षमता है जो सत्ता के मद में मदमस्त हुए अपने कुल के बांधवों का भी सर्वनाश होता देख सकती हैं। यही कारण है कि कृष्ण विसंगतियों के बीच संगति और संभावनाओं का द्वार खोलते है। सर्वत्र विशिष्ट स्थिति का अभिधान करते हैं। कृष्ण इस संसार में रहते हुए संसार को निःसार समझ कर अन्यों के हित के लिए इसका उपयोग करना है, ऐसी शिक्षा देते हैं। कृष्ण, केवल द्वारिकाधीश नहीं हैं, कृष्ण मात्र ग्वाले नहीं हैं, संदीपनी के शिष्य मात्र ही नहीं हैं, केवल रुक्मणी के पति नहीं हैं, राधा के प्रियतम मात्र नहीं और केवल अर्जुन के सारथी नहीं हैं। इन भूमिकाओं

में होते हुए कृष्ण उनके साथ हैं और उनके विरुद्ध वालों के साथ हैं। इसलिए कृष्ण द्रोणाचार्य के साथ भी हैं भीष्म के साथ और कर्ण के साथ भी हैं। इसलिए कृष्ण कर्ण की भी प्रशंशा करते हैं, दुर्योधन को धर्म का मार्ग बताते हैं। वह मानव मन का अहंकार है जो दुर्योधन में बैठा हुआ है। कृष्ण के धर्म के मार्ग को न स्वीकार करने वाला दुर्योधन ही है, जो कह सकता है- 'जानामि धर्मं न च में प्रवृत्तिः।। जानाम्यधर्मं न च में निवृत्तिः''। जो धर्म को जानता है वह तो धर्ममय हो जाता है। कृष्ण कहते हैं जो भूल गया है उसको तो मैं बताऊंगा , लेकिन जो जानता है किन्तु मानता नहीं है, जो जानता है किन्तु प्रवृत्त नहीं होता वही सुयोधन से दुर्योधन हो जाता है। जो दुर्योधन हो जाता है उसका तो संहार करना ही पड़ता है, चाहे वह कौरव हों या अपने वंश के बंधु-बांधव।

सर्वत्र शुभता का विस्तार करते हुए सर्वत्र रस की वर्षा करते हुए सर्वत्र ज्ञान का प्रबोधन करते हुए, दुष्टों का दलन करते हुए, राक्षसीय वृत्तियों को समाप्त करते हुए, प्राणि मात्र को राक्षसीय वृत्तियों से मुक्त करते हुए, धर्म का संगायन करते हुए, इस सृष्टि के उपभोग का उपदेश करते हुए, इस संसार में निरपेक्ष, निष्काम भाव से कर्म करने की पथ की संस्थापना करते हुए, कृष्ण स्वयं में भगवान हैं। कृष्ण का होना सहज हो जाना है, तरल हो जाना है, विगलित हो जाना है, कृष्ण का होना कण-कण का ऐसा हो जाना है, जहां शुक्लत्व है। जहां शुभ्रता है वहां तो सब मुग्ध होते हैं किंतु जो अपनी ओर खींच लेता है, आकर्षित कर लेता है वही मधुसूदन है।ऐसे मधुसूदन कहते हैं -यश्यानुग्रहम इच्छामी तस्यसर्व हराम्यअहं। इन सब को करते हुए कृष्ण लीला पुरुष हैं और लीला भी कैसी -प्राणिमात्र पर अनुग्रह के लिए लीला। इसलिए जब श्रीमद्भागवत् कहता है कि लीला क्या है-

अनुग्रहायभूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वातत्परो भवेत्।।

प्राणिमात्र पर, जीवमात्र पर अनुग्रह की इच्छा से मैं मनुष्य रूप में स्थित होकर इस प्रकार की क्रीड़ा करता हूँ जिसको जानकर के इस जीवन से परे, इस लौकिक अनुभव से परे लोकोत्तर में स्थिति की प्राप्ति हो जाए। हम जानते हैं कि खेल क्या है? खेल सत्य नहीं होता है किन्तु जब हम खेलते हैं तो उसे सत्य मान कर खेलते हैं। बच्चे और बड़े सभी उसे सत्य मानते है। उसके नियम बनाते हैं। चोर-सिपाही से लेकर, द्युतक्रीड़ा आदि जितनी भी क्रीड़ायें हैं। उन सभी क्रीड़ाओं के समान यह संसार भी एक क्रीड़ा मात्र है। इसे केवल कौतुक के रूप में लेना है। इस कौतुक में डूबना नहीं है, जो डूबता है उसकी बुद्धि ध्वंस हो जाती है। जो इस संसार के विषयों को सत्य जानकर ठहर जाता है। जो जान जाता है कि इस संसार की सम्पूर्ण उपलब्धियां तो प्राणी मात्र के लिए है। इस चराचर संसार में जो कुछ भी है वह जीवों के भोग और आनंद के लिए है और जो इसको केन्द्रित करके रुक जाता है, वह मोह को प्राप्त करता है। मोह से क्रोध उत्पन्न होता है। वह क्रोध से बुद्धि के नाश को प्राप्त करता है और अंततः सर्वनाश को प्राप्त करता है। इसलिए कृष्ण सर्वत्र मोह-मद का जो विष है उसका उसका दमन करने वाले हैं। वस्तुतः यही कालिय दमन है। वास्तव में हजार फन वाला साँप होता नहीं है किन्तु हजार फन वाला जो कालीय है वह इस संसार में कामनाओं का सर्प है। हजारों तरह की हमारी इच्छाओं, हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद इत्यादि से उत्पन्न होने वाली विकृतियां हैं। इनको दबाना है। इनके फन के ऊपर चढ़ करके नर्तन करना है। टिकना कही नहीं है। जिस फन के ऊपर टिक गए वह पकड़ लेगा, डस लेगा। इसलिए कृष्ण जब कालीय दमन करते हैं तो उस पर नाचते हैं। वे बांसुरी की तान पर नाचते हैं। ये जो संसार है, कालीय दह है, वे इसके दाह से मुक्ति देते हैं, इस दाह और विष से शुद्धता देते हैं।

कृष्ण इसलिए ईश्वर है क्योंकि उनको सबकी चिंता है, उनको मनुष्यों की चिंता, प्राणियों और पर्यावरण की चिंता है। वे सब के बीच एकतानता की स्थापना करते हैं। इसके पहले के अवतारों ने इस प्रकार से समृद्ध जीवन प्रणाली की स्थापना नहीं की थी। कृष्ण एक ऐसी जीवन प्रणाली की स्थापना करते हैं जिसमें प्रतिष्ठित होकर धर्म अपने मूल रूप में प्रतिष्ठित होता है। धर्म मनुष्य के जीवन में अभ्युदय लाता है और पारलौकिक जीवन में निःश्रेयस देता है। कृष्ण की धर्म-दृष्टि इस जीवन का निषेध नहीं है। इस जीवन के दुःखों से मुक्ति का मार्ग है और इस जीवन से परे जो लोकोत्तर जीवन है उसमें निःश्रेयस के परम सुख की प्राप्ति है। इस प्रकार वे सब को सभी स्थितियों में , सभी प्रकार के बोध और ज्ञान के पर्यायों को सामने रखते हुए आनंद प्रदान करते हैं। कहीं बेटे, पुत्र के रूप में आनंदित करते हैं,, कहीं पति के रूप में आनंदित करते हैं, कहीं प्रेमी के रूप में आनंद रूप हो जाते हैं, कहीं योद्धा के रूप में विजयानंद देते हैं तो कहीं मित्र के रूप में हित और कल्याण करते हैं, कहीं बांधव के रूप में नेहानंद देते हैं, कही राजा के रूप में अभ्युदयानंद देने वाले हैं और कहीं इन सब से परे योगेश्वर के रूप में निःश्रेयसानंद प्रदान करते है। कहीं एक नर्तक के रूप में तन्मयी भाव प्रदान करते हैं तो कहीं घर बनाने वाले के रूप में षिल्पी के रूप में आश्रय देते हैं। कहीं रथ चलने वाले बन कर लक्ष्य प्राप्त कराते हैं तो कहीं गाय चराने वाले बनकर जीवन नवनीत का आनंद प्रस्तुत करते हैं। कहीं सुदर्शन चक्र चलाने वाले की भूमिका में अधर्म का नाष करते हैं तो कहीं गीता का संगायन कर ज्ञान, कर्म और भक्ति की अद्वैती भावना की प्रतिष्ठा करते हैं। जीवन के सभी रूपों में जो ईश्वर तत्व की स्थापना करते हैं, ईश्वर को दैवीय रुप से मानवीयस्वरुप में, मानवीय स्वरुप से चर-अचर, स्थावर-जंगम सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों में अभिव्यंजित करते हैं ऐसे कृपालु श्री कृष्ण सभी का कल्याण करें।

बृहदारण्यकोपनिषद् में उपलब्ध वंश-परम्पराएँ

प्रो. मुरली मनोहर पाठक

भारतीय परम्परा वेद को अपौरूषेय मानती है। सृष्टि के आदि में परमात्मा ने जिस प्रकार लोकानुग्रह के लिए सूर्य, चन्द्र, जल, वायु इत्यादि को उपन्दल्पित किया, उसी प्रकार मानवमात्र का मार्गदर्शन करने के लिये ज्ञानस्वरूप वेद को ऋषियों के साक्षात्कार का विषय बनाया। उन्होंने उस ज्ञान का प्रसार अपने शिष्यों के माध्यम से किया। जिस-जिस ऋषि ने जिन मन्त्रों का साक्षात्कार और प्रसार किया, उन मन्त्रों के साथ उनका नाम स्मृतिचिह्न के रूप में जोड़ दिया गया। कालान्तर में श्रुति-परम्परा से शिष्य-प्रशिष्यों से होती हुई यह विद्या आज भी हमारे सम्मुख उपस्थित है। इसीलिए वेद को 'श्रुति' भी कहा जाता है। संहिता-भाग के अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषत्साहित्य के लिए भी 'श्रुति' शब्द का व्यवहार किया जाता है। इन सभी की एक सुदीर्घ ऋषि-परम्परा है, जिसका उल्लेख इनमें यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है।

"विषयवस्तु की दृष्टि से 'बृहदारण्यकोपनिषद्' को दो-दो अध्यायों के तीन तीन काण्डों में विभक्त किया जाता है- मधुकाण्ड, याज्ञवल्कीयकाण्ड तथा खिलकाण्ड। इनमें से मधु एवं खिलकाण्डों में मुख्यतः उपासना का तथा याज्ञवल्कीय काण्ड में ज्ञान का सविस्तार विवेचन हुआ है। सम्पूर्ण उपनिषद् में चार स्थलों पर ऋषियों की वंशावलियाँ उपलब्ध होती हैं। सर्वप्रथम द्वितीय अध्याय के षष्ठ ब्राह्मण में मधुविद्या की वंश-परम्परा का उल्लेख है। मधुविद्या तात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"

कुलपति
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

वृहदारण्यकोपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध है। यह 'शतपथ-ब्राह्मण' की माध्यन्दिन शाखा के चौदहवें तथा काण्व शाखा के सत्रहवें काण्ड का अन्तिम भाग है। 'शतपथ-ब्राह्मण' के संकलिपता के रूप में ऋषि वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्क्य को स्वीकार किया जाता है। इसकी माध्यन्दिन शाखा के अन्त में स्पष्टतः कहा गया है-'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्कनेन आख्यायन्ते।' अर्थात् सूर्य की कृपा से प्राप्त शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्क्य ने की। वृहदारण्यक, ब्राह्मण भाग होने के साथ ही साथ आरण्यक के रूप् में भी इसी नाम से अभिहित है तथा उपनिषद् के रूप में तो सर्वविदित है ही। इस प्रकार वृहदारण्यक का ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्-तीनों ही रूपों में एक ही नाम तथा स्वरूप् उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त शुक्ल यजुर्वेद के याज्ञवल्क्यकृत भाष्यरूप होने के कारण यह संहिताभाग से साक्षात् सम्बद्ध है।

भगवत्पाद शंकराचार्य इसके नामकरण की चरितार्थता का प्रतिपादन करते हुए अपने भाष्यारम्भ में कहते हैं-

'सेयं षडध्यायी अरण्येडनूच्यमानत्वादारण्यकम्,
वृहत्वात्परिणामतो वृहदारण्यकम्।' [2]

अर्थात् यह छह अध्यायों वाली उपनिषद् अरण्य मं कही जाने वाली होने के कारण आरण्यक है और अन्य उपनिषदों की अपेक्षा परिमाण में वृहद् होने के कारण 'वृहदारण्यक' कही जाती है। वार्तिककार सुरेश्वकाचार्य इसकी आकारगत वृहत्ता के अतिरिक्त अर्थगत वृहत्ता भी स्वीकार करते हैं-

बृहत्वाद्ग्रन्थतोऽर्थाच्च बृहदारण्यकं मतम्। [3]

विषयवस्तु की दृष्टि से ' को दो-दो अध्यायों के तीन तीन काण्डों में विभक्त किया जाता है-मधुकाण्ड, यज्ञवल्कीयकाण्ड तथा खिलकाण्ड। इनमें से मधु एवं खिलकाण्डों में मुख्यतः उपासना का तथा याज्ञवल्कीय काण्ड में ज्ञान का सविस्तार विवेचन हुआ है। सम्पूर्ण उपनिषद् में चार स्थलों पर ऋषियों की वंशावलियाँ उपलब्ध होती हैं। सर्वप्रथम द्वितीय अध्याय के षष्ठ ब्राह्मण में मधुविद्या की वंश-परम्परा का उल्लेख है। मधुविद्या तात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका उपपादन द्वितीय अध्याय के पंचम ब्राह्मण 'मधुब्राह्मण' में उपलब्ध होता है। भगवत्पाद शंकराचार्य के अनुसार इसमें पूर्ववर्ती दोनों अध्यायों के अर्थ का उपसंहार किया गया है-

'सर्वथापि तु अध्यायद्वयस्यार्थोऽस्मिन्ब्राह्मणे उपसंहियते।' [4]

मधु विभिन्न प्रकार के पुष्पों का सार या कार्य होता है तथा पुष्प् उसके कारण होते हैं। इस प्रकार मधु उपकार्य है एवं पुष्प उपकारक। यह उपकार्य-उपकारक भाव ही इस ब्राह्मण में 'मधु' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसके अनुसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् और दिशा आदि सभी पदार्थ चारों भूतों के कार्य हैं तथा भूत उनके कारण हैं। इस प्रकार उनका परस्पर उपकार्य-उपकारकभाव सम्बन्ध उपपन्न होता है और फलतः वे एक दूसरे के मधु हैं। इस व्यावहारिक धरातल के बाद परमार्थतः उनका अधिष्ठान वह ज्योतिर्मय-अमृतमय पुरूष ही है। वही उन सबका वास्तविक स्वरूप है। इसी का नाम आत्मा है और यह आत्मा ही अमृतब्रह्म और सर्वरूप है। [5] इस प्रकार इस ब्राह्मण में अधिष्ठान की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रपंच की ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद षष्ठ ब्राह्मण में इस विद्या की वेश-परम्परा का उल्लेख किया गया है। उसके अनुसार इस विद्या का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से हुआ। ब्रह्मा ने इसका ज्ञान परमेष्ठी को दिया। परमेष्ठी ने सनग को, सनग ने सनातन को, सनातन ने सनारू को, सनारू ने व्यष्टि को, व्यष्टि ने विप्रचित्ति को, विप्रचित्ति ने एकर्षि को, एकर्षि ने प्रध्वंसन को, प्रध्वंसन ने मृत्यु प्रध्वंसन को, मृत्यु प्रध्वंसन ने अथर्वादेव को, अथर्वोदेव ने दध्याङ्ङाथर्वण को, दध्याङ्ङाथर्वण ने अश्विनीकुमारों को, अश्विनीकुमारों ने विश्वरूप त्वाष्ट्र को, विश्वरूप त्वाष्ट्र ने आभूति त्वाष्ट्र को, आभूति त्वाष्ट्र ने अयास्य अंगिरस को, अयास्य आंगिरस ने पन्थासौभर को, पन्थासौभर ने वत्सनपात् वाभ्रव को, वत्सनयात् वाभ्रव ने विदर्भी कौण्डिन्य को, विदर्भी कौण्डिन्य ने गालव को, गालव ने कुमारहारित को, कुमारहारित ने कैशोर्यकाप्य को, कैशोर्यकाप्य ने शाण्डिल्य को, शाण्डिल्य ने वात्स्य को, वात्स्य ने गौतम को, गौतम ने माष्टि को, माण्टि ने आत्रेय को, आत्रेय ने भारद्वाज को, भारद्वाज ने आसुरि को, आसुरि ने औपजन्धनि को, औपजन्धनि ने त्रैवणि को, त्रैवणि ने आसुरायण को, आसुरायन ने जातूकण्य को, जातूकर्ण्य ने पाराशर्य को, पाराशर्य ने पाराशर्यायण को, पाराशर्यायण ने घृतकौशिक को, घृतकौशिक ने कौशिकायनि को, कौशिकायनि ने बैजवापायन को, बैजवापायन ने पाराशर्य को, पाराशर्य ने भारद्वाज को, भारद्वाज ने गौतम को, गौतम तथा भारद्वाज ने भारद्वाज को, भारद्वाज ने पाराशर्य को, पाराशर्य ने सैतव और प्राचीन योग्य को, सैतव और प्राचीन योग्य ने गौतम को, गौतम ने आनिभम्लात को, आनभिम्लात ने आनभिम्लात को, आनभिम्लात तथा शाण्डिलय ने अग्निवेश्य को, अग्निवेश्य ने गौतम को, गौतम और कौशिक ने शाण्डिल्य को, शाण्डिल्य ने कौण्डिल्य को, कौण्डिल्य ने कौशिक को, कौशिक ने गौपवन को, गौपवन ने पौतिमाष्य को, पौतिमाष्य ने गौपवन को तथा गौपवनन पौतिमाष्य को दिया। [6]

मधु विभिन्न प्रकार के पुष्पों का सार या कार्य होता है तथा पुष्प् उसके कारण होते हैं। इस प्रकार मधु उपकार्य है एवं पुष्प उपकारक। यह उपकार्य-उपकारक भाव ही इस ब्राह्मण में 'मधु' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसके अनुसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् और दिशा आदि सभी पदार्थ चारों भूतों के कार्य हैं तथा भूत उनके कारण हैं। इस प्रकार उनका परस्पर उपकार्य-उपकारकभाव सम्बन्ध उपपन्न होता है और फलतः वे एक दूसरे के मधु हैं। इस व्यावहारिक धरातल के बाद परमार्थतः उनका अधिष्ठान वह ज्योतिर्मय-अमृतमय पुरूष ही है। वही उन सबका वास्तविक स्वरूप है। इसी का नाम आत्मा है और यह आत्मा ही अमृतब्रह्म और सर्वरूप है।

इस प्रकार एक समृद्ध ऋषि-परम्परा से यह 'मधु विद्या' लोक में प्रसृत है। आचार्य शङर ने इस 'वंश' को 'वंश' (बाँस) के रूप में स्वीकार किया है। वे कहते हैं-तत्र वंश इव वंशः-यथा वेणुर्वंशः पर्वणः पर्वणो हि भियते तद्वदग्रात्प्रभृति आमूलप्राप्तेरयं वंशः। अध्यायचतुष्टयस्य आचार्यप्ररम्पराक्रमो वंश इत्युच्यते। तत्र प्रथमान्तः शिष्यः पंचम्यन्त आचार्यः। परमेष्ठी विराट्, ब्रह्मणो हिरण्यगर्भात्। ततः परमाचार्यपरम्परा नास्ति। यत्पुनर्ब्रह्म तन्नित्यं स्वयम्भु। [7] तात्पर्य यह है कि प्रकृत वंश, वंश (बाँस) के

समान है। जिस प्रकार पर्वों का वंशभूत वेणु (बाँस) पर्वों से भिन्न है, उसी प्रकार अग्रभाग से लेकर मूलपर्यन्त यह वंश भी भिन्न है। इस ब्राह्मण भाग के आरम्भिक चार अध्यायों की आचार्यपरम्परा 'वंश' नाम से कही गई है। इसमें प्रथमाविभक्तयन्त्र शिष्य है और पंचमयन्त्र आचार्य हैं। परमेष्ठी अर्थात् विराट् ने ब्रह्मा-हिरण्यगर्भ से यह पद विद्या प्राप्त की। उससे आगे आचार्यपरम्परा नहीं है, क्योंकि जो ब्रह्म है, वह तो नित्य और स्वयम्भू है।

बृहदारण्यकोपनिषद् का तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय 'याज्ञवल्केय काण्ड कहलाता है। इसका प्रतिपाद्य निर्धारित करते हुए आचार्य शङर कहते हैं-'

आगमप्रधानेन मधुकाधेन यदमृतत्वसाधनं ससंन्यासमात्मतानभिहितम्, तदेव तर्केणाप्यहमत्वसाधनं ससंन्यासमात्मज्ञानमधिगम्यते।

तर्कप्रधानं हि याज्ञवल्कीयं काण्डम्, तस्माच्छास्त्रतर्काभ्यां निश्चतमेतत्-पदेतदात्मज्ञानं ससन्यास-ममृतत्वासाधनमिति। [8]

अर्थात् आगमप्रधान मधुकाण्ड ने जिस संन्यासयुक्त आत्मज्ञान को अमृतत्व का साधन बतलाया है, वही ससन्यास आत्मज्ञान तर्क से भी अमृतत्व का साधन जाना जाता है। याज्ञवल्कीयंकाण्ड तर्कप्रधान ही है। अतः यह जो अमृतत्व का साधन संन्याययुक्त आत्मज्ञान है, वह शास्त्र और तर्क दोनों से ही निश्चत है।

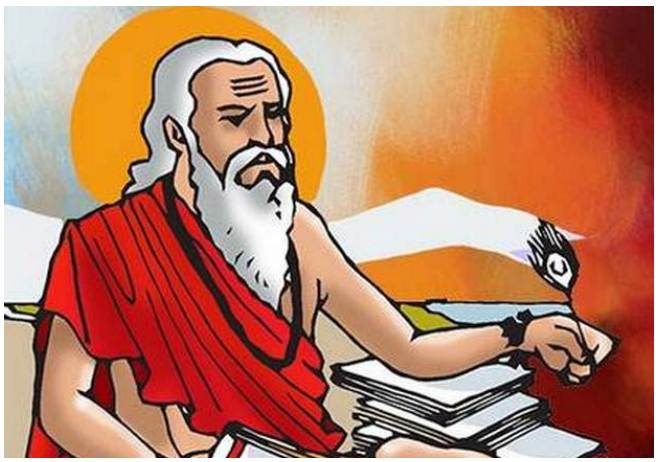

चतुर्थ अध्याय के पाँचवें ब्राह्मण में बताई गई है। उसमें ब्रह्मा से लेकर कौशिकायनि तक की आचार्यपरम्परा मधुकाण्ड से अभिन्न है। इसके बाद के आचार्यों-शिष्यों में भेद दृष्टिगत होता है। उसके अनुसार कौशिकायनि ने यह विद्या सायकायन को प्रदान की। इसके बाद सायकायन ने काषायण को, काषायण ने सौकरायण को, सौकरायण ने माध्यन्दिनायन को, माध्यन्दिनायन ने जाबालायन को, जाबालायन ने उद्दालकायन को, उद्दालकायन ने गार्ग्यायण को, गार्ग्यायण ने पाराशर्यायण को, पाराशर्यायण ने सैतव को, सैतव ने गौतम को, गौतम ने गार्ग्य को, गार्ग्य ने गार्ग्य को, गार्ग्य ने आग्निवेश्य को और आग्निवेश्य ने गौतम को इस विद्या का उपदेश किया। [9] गौतम पौतिमाष्य तक की आचार्य-परम्परा मधुब्राह्मण के समान ही है। उपनिषद् के षष्ठ अध्याय के तृतीय ब्राह्मण में श्रीमन्यकम तथा उसके विधान का निर्देश किया गया है। इसमें वित्तोपार्जन-हेतु अनुष्ठान निहित है। भगवत्पाद के अनुसार ज्ञान और कर्म के विषय में वैशिष्ट्य यह है कि ज्ञान स्वतन्त्र है तथा कर्म दैव और मानुष-इन दो वित्तों के अधीन है। अतः कर्म के लिये वित्तोपार्जन करना चाहिये। इस हेतु वह मार्ग अपनाना चाहिए, जो प्रत्यवाय न उत्पनन करने वाला हो। इस प्रकार महत्वप्राप्ति के लिये मन्यसंज्ञक कर्म बताया गया है। महत्व होनेपर तो वित स्वतः सिद्ध हो जाता है। [10] इसी तृतीय ब्राह्मण के सप्तम मन्त्र से लेकर एकादश मन्त्र तक मन्थकर्म को वंशपरम्परा बताई गई है। उसके अनुसार सर्वप्रथम उद्दालक आरूणि ने अपने शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य को इस मन्त्र का उपदेश कर के कहा था-'**अपि य एनं शुष्के स्थाणौ निषिंचेज्जायेरंशाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति।**'[11] अर्थात् यदि कोई इस मन्थ को सूखे ठूँठ पर डाल देगा, तो उससे शाखाएं उत्पन्न हो जाएंगी और पत्ते निकल आएंगे। इस मन्थविद्या का उपदेश वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य मधुकपैङ्ग्य को, मधुकपैङ्ग्य ने अपने शिष्य चूल भागवित्ति को, चूलभागवित्ति ने अपने शिष्य जानकि आयस्थूण को और जानकि आयस्थूण ने अपने शिष्य सत्यकाम जाबाल को किया था। सत्यकाम जाबाल ने इसका उपदेष अपने शिष्यों को करते हुए यह निर्देश दिया था कि 'तमेतं नापुत्राय वानन्तेवासिने वा ब्रूयात्।'[12] अर्थात् इस मन्थकर्म का उपदेश अपने पुत्र अथवा अन्तेवासी (शिष्य) को ही करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि विद्याप्राप्ति के छह तीर्थों [13] में से केवल पुत्र और शिष्य ही इस मन्थविज्ञान की प्राप्ति के अधिकारी हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् के पंचम एवं षष्ठ अध्याय 'खिलकाण्ड' के अन्तर्गत आते हैं। इनमें अनेक प्रकार की उपासनाओं का वर्णन है। षष्ठ अध्याय के अन्तिम पंचम ब्राह्मण में समस्त प्रवचन का वंश बताया गया है। यह परम्परा भी ब्रह्मा से ही प्रारम्भ होती है। ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने तुर कावषेय को, तुर कावषेय ने यज्ञवचा राजस्तम्बायन को, यज्ञवचा राजस्तम्बायन ने कुश्रि को, कुश्रि ने वात्स्य को, वात्स्य ने शाण्डिल्य को, शाण्डिल्य ने वामकक्षायण को, वामकक्षायण ने माहित्थि को, माहित्थि ने कौत्स को, कौत्स ने माण्डव्य को, ने माण्डूकायनि को तथा माण्डूकायनि ने सांजीवीपुत्र को इस विद्या का उपदेश किया। सांजीवीपुत्र से आगे की परम्परा एक ही वंश की है। [14] इसके बाद आदित्य की परम्परा का उल्लेख है। उसके अनुसार आदित्य ने शुक्लयजुर्वेद की इस विद्या को अम्भिणी को प्रदान किया, अम्भिणी ने वाक् को, वाक् ने कश्यप नैध्रुवि को, कश्यम नैध्रुवि ने शिल्प कश्यप को, शिल्पकश्यप ने हरितकश्यप को, हरितकश्यप ने असित वार्षगण को,

असित वार्षगण ने जिह्वावान् वाध्योग को, जिह्वावान वाध्योग ने वाजश्रवा को, वाजश्रवा ने कुश्रि को, कुश्रि ने उपवेशि को, उपवेशि ने अरूण को, अरूण ने उद्दालक को, उद्दालक ने याज्ञवल्क्य को, याज्ञवल्क्य ने आसुरि को, आसुरि ने आसुरायण को, आसुरायण ने प्राश्नीपुत्र को, प्राश्नीपुत्र ने सांजीवीपुत्रको, सांजीवीपुत्र ने प्राचीनयोगी पुत्र को, प्राचीनयोगी पुत्र ने काशकेयी पुत्र को, काशकेयी पुत्र ने वैदभृतीपुत्र को, वैदभृतीपुत्र ने दोनों क्रौंचिकीपुत्रों को, क्रौंचिकी पुत्रों ने भालुकी पुत्र को, भालुकी पुत्रा ने राथीतरी पुत्र को, राथीतरीपुत्र ने शाण्डिली पुत्र को, शाण्डिली पुत्र ने माण्डूकीपुत्र को, माण्डूकीपुत्र ने माण्डूकायनी पुत्र को, माण्डूकायनी पुत्र ने जायन्ती पुत्र को, जायन्ती पुत्र ने आलम्बी पुत्र को, आलम्बी पुत्र ने आलम्बायनी पुत्र को, आलम्बायनी पुत्र ने साङ्कृती पुत्र को, साङ्कृती पुत्र ने शौंङगी पुत्र को, शौंङगी पुत्र ने आर्तभागी पुत्र को, आर्तभागी पुत्र ने वार्कारूणी पुत्र को, वार्कारूणी पुत्र ने वार्कारूणी पुत्र ने पाराशरीपुत्र को, पाराशरी पुत्र ने वात्सीपुत्र को, वात्सीपुत्र ने पाराशरी पुत्र को, पाराशरी पुत्र ने भारद्वाजी पुत्र को, भारद्वाजी पुत्र ने गौतमीपुत्र को, गौतमीपुत्र ने आत्रेयीपु. को, आत्रेयीपुत्र ने कापीपुत्र को, कापीपुत्र तथा काण्वीपु. ने वैयाघ्रपदी पुत्र को, वैयाघ्रपदी पुत्र तथा आलम्बीपुत्र ने कौशिकी पुत्र को, कौशिकी पुत्र ने कात्यायनी पुत्र को, कात्यायनी पुत्र ने पाराशरी पुत्र को, पाराशरी पुत्र ने औपस्वस्ती पुत्र को, औपस्वती पुत्र ने पाराशरी पुत्र को, पाराशरी पुत्र ने भारद्वाजी पुत्र को, भारद्वाजी पुत्र ने गौतमी पुत्र को, गौतमी पुत्र ने कात्यायनी पुत्र को तथा कात्यायनी पुत्र ने पौतिमाषीपुत्र को शुक्ल यजुर्विद्या का उपदेश किया। [15]

भगवत्पाद शङ्कराचार्य प्रकृत आचार्य परम्परा को ग्रन्थ के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद की वंशावली के रूप में पुष्ट करते हुए 'शुक्ल' शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं- 'शुक्लानीत्यव्यामिश्राणि ब्राह्मणेन; अथवा मानीमानि यजूंषि तानि शुक्लानि शुद्धानीत्येतत्।' अर्थात् ये श्रुतियाँ शुक्ल-ब्राह्मण से अव्यामिश्र हैं अथवा जो ये यजुःश्रुतियाँ हैं, वे शुद्ध हैं। [16]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बृहदारण्यकोपनिषद् में उपलब्ध वंशपरम्पराएं साक्षात् शुक्ल यजुर्वेद की होने के कारण संहिताभाग की ही वंशावलियाँ हैं। विशेष रूप् से ये ब्रह्मा से आरम्भ होकर पौतिमाषीपुत्र या पौतिमाष्य पर आकर रूकती हैं, अतएव इनका प्रतिपाद्य विषय आज भी अक्षुण्ण हैं।

सन्दर्भः

1-शतपथब्राह्मण-14.9.4.33
2- बृहदारण्यकोपनिषद्-1.1.1 पर शाङ्करभाष्य का भूमिका भाग।
3-सं0 वार्तिक-9
4- बृहदारण्यकोपनिषद्-2.5.1 पर का भूमिका भाग।
5-द्रष्टव्य, बृहदारण्यकोपनिषद् 2.5 तथा इस पर शाङ्करभाष्य।
6-द्रष्टव्य, वही-2.6
7-वही, शाङ्करभाष्य।
8- बृहदारण्यकोपनिषद्-4.5, पर शाङ्करभाष्य का भूमिका भाग।
9-वही, 4.6
10-तत्र ज्ञानं स्वतन्त्रं कर्म तु.....सत्यर्थसिद्धं हि वित्तम्। वही, 6.3 पर शाङ्करभाष्य।
11-वही, 6.3.7
12-वही, 6.3.12
13-शिष्य, वेदाध्यायी श्रोत्रिय, धारणाशक्तिसम्पन्न पुरूष, धन देने वाला, प्रिय पुत्र और जो एक विद्या सीखकर दूसरी सिखाने वाला हो-ये छह विद्यादान के अधिकारी हैं।
14-बृहदारण्यकोपनिषद्-6.5.4
15-वही, 6.5.1-3
16-वही, शाङ्करभाष्य का अन्तिम अंश।

जय-विजय के बीच हम सबके राम

प्रो. संजय द्विवेदी

असंख्य जनमानस की व्यापक आस्थाओं के कण-कण में विद्यमान प्रभु श्रीराम के मंदिर के निर्माण की शुभ शुरुआत होना एक अनूठी एवं प्रेरक घटना है, एक कालजयी आस्था के प्रकटीकरण का अवसर है, जो भारत के लिये शक्ति, स्वाभिमान, गुरुता एवं प्रेरणा का माध्यम बनेगी। राम का समूचा जीवन संघर्ष की अनथक कथा है। इसी तरह राममंदिर का निर्माण भी एक अनथक संघर्ष का प्रतीक है। अयोध्या यानि वह भूमि जहां कभी युद्ध न हुआ हो। ऐसी भूमि पर कलयुग में एक लंबी लड़ाई चली और त्रेतायुग में पैदा हुए रघुकुल गौरव भगवान श्रीराम को आखिरकार छत नसीब होने वाली है। राजनीति कैसे साधारण विषयों को भी उलझाकर मुद्दे में तब्दील कर देती है, रामजन्मभूमि का विवाद इसका उदाहरण है।

आजादी मिलने के समय सोमनाथ मंदिर के साथ ही यह विषय हल हो जाता तो कितना अच्छा होता। आक्रमणकारियों द्वारा भारत के मंदिरों के साथ क्या किया गया, यह छिपा हुआ तथ्य नहीं है। किंतु उन हजारों मंदिरों की जगह, अयोध्या की जन्मभूमि को नहीं रखा जा सकता। एक ऐतिहासिक अन्याय की परिणति आखिरकार ऐतिहासिक न्याय ही होता है। यह बहुत संतोष की बात है कि भारत की न्याय प्रक्रिया के तहत इस आए फैसले से इस मंदिर का निर्माण हो रहा है। देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस अर्थ में गौरवशाली हैं कि उनके कार्यकाल में इस विवाद का सौजन्यतापूर्ण हल निकल सका और मंदिर निर्माण का शुभारंभ हो सका। इस आंदोलन से जुड़े अनेक नायक आज दुनिया में नहीं हैं। उनकी स्मृति आती है। मुझे ध्यान है उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के नेता और मंत्री रहे श्री दाऊदयाल खन्ना ने मंदिर के मुद्दे को आठवें दशक में जोरशोर से उठाया था। उसके साथ ही श्री अशोक सिंहल जैसे नायक का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी संगठन क्षमता से इस आंदोलन को जनांदोलन में बदल दिया। संत रामचंद्र परमहंस, महंत अवैद्यनाथ जैसे संत इस आंदोलन से जुड़े और समूचे देश में इसे लेकर एक भावभूमि बनी। तब से लेकर आज तक सरयू नदी ने अनेक जमावड़े और कारसेवा के प्रसंग देखे हैं। सुप्रीम कोर्ट के सुप्रीम फैसले के बाद जिस तरह का संयम हिंदू समाज ने दिखाया वह भी बहुत महत्त्व का विषय है। क्या ही अच्छा होता कि इस कार्य को साझी समझ से हल कर लिया जाता। किंतु राजनीतिक आग्रहों ने ऐसा होने नहीं दिया। कई बार जिदें कुछ देकर नहीं जातीं, भरोसा, सद्भाव और भाईचारे पर ग्रहण जरुर लगा देती हैं।

दुनिया के किसी देश में यह संभव नहीं है उसके आराध्य इतने लंबे समय तक मुकदमों का सामना करें। किंतु यह हुआ और सारी दुनिया ने इसे देखा। यह भारत के लोकतंत्र, उसके न्यायिक-सामाजिक मूल्यों की स्थापना का समय भी है। यह सिर्फ मंदिर नहीं है जन्मभूमि है, हमें इसे कभी नहीं भूलना चाहिए। विदेशी आक्रांताओं का मानस क्या रहा होगा, कहने की जरुरत नहीं है। किंतु हर भारतवासी का राम से रिश्ता है, इसमें भी कोई दो राय नहीं है। वे हमारे प्रेरणापुरुष हैं, इतिहास पुरुष हैं और उनकी लोकव्याप्ति विस्मयकारी है। ऐसा लोकनायक न सदियों में हुआ है और न होगा। लोकजीवन में, साहित्य में, इतिहास में, भूगोल में, हमारी प्रदर्शनकलाओं में उनकी

“दुनिया के किसी देश में यह संभव नहीं है उसके आराध्य इतने लंबे समय तक मुकदमों का सामना करें। किंतु यह हुआ और सारी दुनिया ने इसे देखा। यह भारत के लोकतंत्र, उसके न्यायिक-सामाजिक मूल्यों की स्थापना का समय भी है। यह सिर्फ मंदिर नहीं है जन्मभूमि है, हमें इसे कभी नहीं भूलना चाहिए। विदेशी आक्रांताओं का मानस क्या रहा होगा, कहने की जरुरत नहीं है। किंतु हर भारतवासी का राम से रिश्ता है, इसमें भी कोई दो राय नहीं है। वे हमारे प्रेरणापुरुष हैं, इतिहास पुरुष हैं और उनकी लोकव्याप्ति विस्मयकारी है। ऐसा लोकनायक न सदियों में हुआ है और न होगा।”

महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

उपस्थिति बताती है राम किस तरह इस देश का जीवन हैं।

राम शब्द संस्कृत की 'रम' क्रीड़ायाम धातु से बना है अर्थात हरेक मनुष्य के अंदर रमण करने वाला जो चैतन्य-स्वरूप आत्मा का प्रकाश विद्यमान है, वही राम है। राम को शील-सदाचार, मंगल-मैत्री, करुणा, क्षमा, सौंदर्य और शक्ति का पर्याय माना गया है। कोई व्यक्ति सतत साधना के द्वारा अपने संस्कारों का परिशोधन कर राम के इन तमाम सद्गुणों को अंगीकार कर लेता है, तो उसका चित्त इतना निर्मल और पारदर्शी हो जाता है कि उसे अपने अंतःकरण में राम के अस्तित्व का अहसास होने लगता है। [1]

कदाचित यही वह अवस्था है जब संत कबीर के मुख से निकला होगा,

'मोको कहां ढूंढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।'

राम, दशरथ और कौशल्या के पुत्र थे। संस्कृत में दशरथ का अर्थ है- दस रथों का मालिक। अर्थात पांच कर्मेंद्रियों और पांच ज्ञानेंद्रियों का स्वामी। कौशल्या का अर्थ है- 'कुशलता'। जब कोई अपनी कर्मेंद्रियों पर संयम रखते हुए अपनी ज्ञानेंद्रियों को मर्यादापूर्वक सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है, तो उसका चित्त स्वाभाविक रूप से राम में रमने लगता है।

पूजा-अर्चना की तमाम सामग्रियां उसके लिए गौण हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना सहज और सरल हो जाता है कि वह जीवन में आने वाली तमाम मुश्किलों का स्थितप्रज्ञ होकर मुस्कुराते हुए सामना कर लेता है। भारतीय जनमानस में राम का महत्व इसलिए नहीं है कि उन्होंने जीवन में इतनी मुश्किलें झेलीं, बल्कि उनका महत्व इसलिए है, क्योंकि उन्होंने उन तमाम कठिनाइयों का सामना बहुत ही सहजता से किया। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम भी इसलिए कहते हैं, क्योंकि अपने सबसे मुश्किल क्षणों में भी उन्होंने स्वयं को बेहद गरिमापूर्ण रखा। [2]

राम का होना मर्यादाओं का होना है, रिश्तों का होना है, संवेदना का होना है, सामाजिक न्याय का होना है, करुणा का होना है। वे सही मायनों में भारतीयता के उच्चादर्शों को स्थापित करने वाले नायक हैं। उन्हें ईश्वर कहकर हम अपने से दूर करते हैं। जबकि एक मनुष्य के नाते उनकी उपस्थिति हमें अधिक प्रेरित करती है। एक आदर्श पुत्र, भाई, सखा, न्यायप्रिय नायक हर रुप में वे संपूर्ण हैं। उनके राजत्व में भी लोकतत्व और लोकतंत्र के मूल्य समाहित हैं। वे जीतते हैं किंतु हड़पते नहीं। सुग्रीव और विभीषण का राजतिलक करके वे उन मूल्यों की स्थापना करते हैं जो विश्वशांति के लिए जरुरी हैं। वे आक्रामणकारी और विध्वंशक नहीं है। वे देशों का भूगोल बदलने की आसुरी इच्छा से मुक्त हैं। वे मुक्त करते हैं बांधते नहीं। अयोध्या उनके मन में

बसती है। इसलिए वे कह पाते हैं,

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

यानि जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है। अपनी माटी के प्रति यह भाव प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी नागरिक का भाव होना चाहिए। वे नियमों पर चलते हैं। अति होने पर ही शक्ति का आश्रय लेते हैं। उनमें अपार धीरज है। वे समुद्र की तीन दिनों तक प्रार्थना करते हैं।

विनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति
बोले राम सकोप तब भय बिनु होहिं न प्रीति।

यह उनके धैर्य का उच्चादर्श है। वे वाणी से, कृति से किसी को दुख नहीं देना चाहते हैं। वे चेहरे पर हमेशा मधुर मुस्कान रखते हैं। उनके घीरोदात्त नायक की छवि उन्हें बहुत अलग बनाती है। वे जनता के प्रति समर्पित हैं। इसलिए तुलसीदास जी रामराज की अप्रतिम छवि का वर्णन करते हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
रामराज काहुंहिं नहीं व्यापा।

राम ने जो आदर्श स्थापित किए उस पर चलना कठिन है। किंतु लोकमन में व्याप्त इस नायक को सबने अपना आदर्श माना। राम सबके हैं। वे कबीर के भी हैं, रहीम के भी हैं, वे गांधी के भी हैं, लोहिया के भी हैं। राम का चरित्र सबको बांधता है। अनेक रामायण और रामचरित पर लिखे गए महाकाव्य इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त स्वयं लिखते हैं-

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है।

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के ऐसे वटवृक्ष हैं, जिनकी पावन छाया में मानव युग-युग तक जीवन की प्रेरणा और उपदेश लेता रहेगा। जब तक श्रीराम जन-जन के हृदय में जीवित हैं, तब तक भारतीय संस्कृति के मूल तत्व अजर-अमर रहेंगे। श्रीराम भारतीय जन-जीवन में धर्म भावना के प्रतीक हैं, उनमें मानवोचित और देवोचित गुण थे, इसीलिए वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए। भगवान श्रीराम का जीवन चरित्र भारत की सीमाओं को लांघकर विदेशियों के लिए भी शांति, प्रेरणा और नवजीवनदायक बनता जा रहा है। [3]

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के ऐसे वटवृक्ष हैं, जिनकी पावन छाया में मानव युग-युग तक जीवन की प्रेरणा और उपदेश लेता रहेगा। जब तक श्रीराम जन-जन के हृदय में जीवित हैं, तब तक भारतीय संस्कृति के मूल तत्व अजर-अमर रहेंगे। श्रीराम भारतीय जन-जीवन में धर्म भावना के प्रतीक हैं, उनमें मानवोचित और देवोचित गुण थे, इसीलिए वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए। भगवान श्रीराम का जीवन चरित्र भारत की सीमाओं को लांघकर विदेशियों के लिए भी शांति, प्रेरणा और नवजीवनदायक बनता जा रहा है।3 श्रीराम धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं, धर्म के किसी अंग को देखना है, तो राम का जीवन देखिये, आपको धर्म की असली पहचान हो जायेगी। धर्म की पूर्णता उनके जीवन में आद्यन्त घटित हुई है।

श्रीराम धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं, धर्म के किसी अंग को देखना है, तो राम का जीवन देखिये, आपको धर्म की असली पहचान हो जायेगी। धर्म की पूर्णता उनके जीवन में आद्यन्त घटित हुई है।

श्रीराम ने लौकिक धरातल पर स्थिर रहकर धर्म एवं मर्यादा का पालन करते हुए मानव को असत्य से सत्य की ओर, अधर्म से धर्म की ओर तथा अन्याय से न्याय की ओर चलने की प्रेरणा दी है। कर्त्तव्य की वेदी पर अपने व्यक्तिगत सुख-प्रलोभनों की आहुति श्रीराम की जीवन कहानी का सार है। संसार में महापुरुष अपने जीवन, गुण, कर्म, स्वभाव, कर्त्तव्य, बुद्धि, तप-त्याग और तपस्या से जो अमर जीवन-संदेश देते हैं, वही मानवता की स्थायी धरोहर होती है। हमारा सौभाग्य है कि हम ऐसे दैवीय गुणों के धनी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र की संताने हैं। श्रीराम का प्रेरक चरित्र भूली-भटकी मानव जाति में नवजीवन चेतना का संचार कर सकता है। उनके जीवन की घटनाएं आज के भोगी विलासी और मानवता का गला घोंटने वाले नामधारी मनुष्य को बहुत कुछ सोचने, करने और जीने की प्रेरणा दे सकती है। उनके जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप से अमर संदेश मिलता है। श्रीराम के द्वारा दर्शित आदर्शों एवं जीवन मूल्यों का भारतीय समाज में बहुत ऊंचा स्थान है। [4]

यदि हम सबक लेना चाहें, तो रामायण की प्रत्येक घटना से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

लक्ष्मण जी का श्रीराम जी के साथ वन-गमन करना, भरत जी का राज्य को ठुकराना, पादुका रखकर शासन-व्यवस्था चलाना, परस्पर भाइयों की प्रीति का श्रेष्ठ उदाहरण है। आज भाई-भाई एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं, परिवार परस्पर की कलह के कारण टूट रहे हैं। सर्वत्र स्वार्थ, अहंकार और अकेले भोगने की भावना उद्दाम हो रही है। ऐसे में रामायण हमें शिक्षा देती है कि नश्वर सुख-भोग और धन-धाम-धरा के लिए परस्पर लड़ना नहीं चाहिए। चित्रकूट प्रवास-काल में शूर्पणखा द्वारा श्रीराम को अपनी ओर आकर्षित

करके विवाह का प्रस्ताव रखने पर राम द्वारा दृढ़ता से मना कर देना प्रेरणा देता है कि यदि जीवन को सुखी और शान्तिमय बनाना है, तो एक पत्नीव्रत का आचरण करना चाहिए। स्वर्णमृग को देखकर सीताजी का उसे पाने की इच्छा करना तथा भगवान राम द्वारा मायावी मृग को पाने के लिए पीछे दौड़ना और सीता जी का हरण हो जाने की घटना आज के जीवन प्रसंगों को बहुत कुछ प्रेरणा दे सकती है। आज का मनुष्य धन की मृगतृष्णा के पीछे पागलों की तरह दौड़ा जा रहा है, जो प्राप्त है उससे संतुष्ट नहीं हो पा रहा है। विज्ञान की चमकीली, भड़कीली, दिखावटी, बनावटी चीजों के पीछे दिन-रात अधर्म-असत्य, छल-प्रपंच का सहारा लेकर दौड़ा जा रहा है। इससे हानि यह हुई है कि आत्मारूपी सीता छिन गई है, भौतिकवादी व्यक्ति सिर्फ शरीर के लिए जीने लगा है तथा इसी मृगतृष्णा में वह जीवन का अंत कर लेता है। [5]

रामायण कहती है दुनिया में आंखें खोलकर चलो, सभी चमकने वाली चीजें सोना नहीं होती हैं। चमक-दमक में व्यक्ति हमेशा धोखा खाता है, इसी धोखे में आत्मरूपी सीता का रावण द्वारा हरण होता है तथा बाद में राम-रावण का निर्णायक युद्ध होता है। यदि रामायण से कुछ सीखना है, तो चरित्र निर्माण, विचारों की उच्चता, भावों की शुद्धता, पवित्रता तथा जीवन को धर्म-मर्यादा एवं उच्चादर्श की ओर ले चलना सीखें। सीता जी का राम जी के साथ वन जाना संसार के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ देता है। वनवास राम जी को मिला था, सीता जी को नहीं, रामायण में वनवास का प्रसंग यह शिक्षा देता हैं की नारी की परीक्षा संपत्ति में नहीं विपत्ति में होती है।

राम अपने जीवन की सरलता, संघर्ष और लोकजीवन से सहज रिश्तों के नाते कवियों और लेखकों के सहज आकर्षण का केंद्र रहे हैं। उनकी छवि अति मनभावन है। वे सबसे जुड़ते हैं, सबसे सहज हैं। उनका हर रूप, उनकी हर भूमिका इतनी मोहनी है कि कविता अपने आप फूटती है। किंतु सच तो यह है कि आज के कठिन समय में राम के आदर्शों पर चलता साधारण नहीं है। उनसी सहजता लेकर जीवन जीना कठिन है। वे सही मायनों में इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम कहे गए। उनका समूचा व्यक्तित्व राजपुत्र होने के बाद भी संघर्षों की अविरलता से बना है। वे कभी सुख और चैन के दिन कहां देख पाते हैं। वे लगातार युद्ध में हैं। घर में, परिवार में, ऋषियों के यज्ञों की रक्षा करते हुए, आसुरी शक्तियों से जूझते हुए, निजी जीवन में दुखों का सामना करते हुए, बालि और रावण जैसी सत्ताओं से टकराते हुए। वे अविचल हैं। योद्धा हैं। उनकी मुस्कान मलिन नहीं पड़ती। अयोध्या लौटकर वे सबसे पहले मां कैकेयी का आशीर्वाद लेते हैं। यह विराटता सरल नहीं है। पर राम ऐसे ही हैं। सहज-सरल और इस दुनिया के एक अबूझ से मनुष्य।

राम भक्त वत्सल हैं, मित्र वत्सल हैं, प्रजा वत्सल हैं। उनकी एक जिंदगी में अनेक छवियां हैं। जिनसे सीखा जा सकता है। अयोध्या का मंदिर इन सद् विचारों, श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का प्रेरक बने। राम सबके हैं। सब राम के हैं। यह भाव प्रसारित हो तो देश जुड़ेगा। यह देश राम का है। इस देश के सभी नागरिक राम के ही वंशज हैं। हम सब उनके ही वैचारिक और वंशानुगत उत्तराधिकारी हैं, यह मानने से दायित्वबोध भी जागेगा, राम अपने से लगेगें। जब वे अपने से लगेगें तो उनके मूल्यों और उनकी विरासतों से मुंह मोड़ना कठिन होगा। सही मायनों में 'रामराज्य' आएगा। कवि बाल्मीकि के राम, तुलसी के राम, गांधी के राम, कबीर के राम, लोहिया के राम, हम सबके राम हमारे मनों में होंगे। वे तब एक प्रतीकात्मक उपस्थिति भर नहीं होंगे, बल्कि तात्विक उपस्थिति भी होंगे। वे सामाजिक समरसता और ममता के प्रेरक भी बनेंगे और कर्ता भी। इसी में हमारी और इस देश की मुक्ति है।

राम अपने जीवन की सरलता, संघर्ष और लोकजीवन से सहज रिश्तों के नाते कवियों और लेखकों के सहज आकर्षण का केंद्र रहे हैं। उनकी छवि अति मनभावन है। वे सबसे जुड़ते हैं, सबसे सहज हैं। उनका हर रूप, उनकी हर भूमिका इतनी मोहनी है कि कविता अपने आप फूटती है। किंतु सच तो यह है कि आज के कठिन समय में राम के आदर्शों पर चलता साधारण नहीं है। उनसी सहजता लेकर जीवन जीना कठिन है। वे सही मायनों में इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम कहे गए। उनका समूचा व्यक्तित्व राजपुत्र होने के बाद भी संघर्षों की अविरलता से बना है। वे कभी सुख और चैन के दिन कहां देख पाते हैं। वे लगातार युद्ध में हैं।

संदर्भः

1. Pattanaik, Devdutt. (2008). The Book of Ram. United Kingdom: Penguin Books

2. वाधवा, नलिन. (2019). राम कथा. नई दिल्लीः नोशन प्रेस पब्लिशिंग

3. भाटिया, सुदर्शन. (2020). राम की अयोध्या. नई दिल्लीः डायमंड बुक्स

4. Yogi, Dr. Sunil. (2016). Management Guru Bhagwan Sri Ram. New Delhi: Diamond Books

5. गुप्त, मैथिलीशरण. (2020). साकेत. नई दिल्लीः लोकभारती प्रकाशन

सनातन संस्कृति और विश्वास की मूल

प्रो. हिमांशु चतर्वेदी

पश्चिमी विधि के इतिहास लेखन ने समस्या यह खड़ी कर दी कि उसे किसी भी प्रमाणिकता हेतु साक्ष्यों की आवश्यकता को ही सर्वमान्य माना। परन्तु प्रश्न यह भी हैं कि ब्रिटिश यह है संविधान तो परंपराओं पर आधारित महान कृति है, पर यही 'परम्परायें' भारतीय संदर्भ में ऐतिहासिक प्रश्नावलियों को संदेह के घेरे में लाकर खड़ी कर दी जाती है। पश्चिमी मानकों तथा स्वातन्त्रय उपरान्त उनके देशी अनुयायियों के द्वारा भारतीय संदर्भ में विश्वास मौलिक रूप से 'परम्पराओं' से ही जुड़ा हुआ है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है और यह कह पाना की कोई 'परम्परा' इस निश्चित दिन से प्रारम्भ हुई या जन्मी शायद हास्यापद ही होगा। इसीलिए जब हम भारत और उसकी आदि काल से चली आ रही परम्पराओं की निरन्तरता को केन्द्र में रख कर देखते है तो यह समस्त प्रश्न ही अपने आप में रोचक हो जाता है कि भारतीय इतिहास को उसकी परम्पराओं में कितना खोजा जाना चाहिए और साक्ष्यों को उसमें कैसे समाविष्ट किया जाना चाहिए। उत्तर निकलता है पौराणिक मान्यताओं, प्राच्य काल के संस्कृत, पाली और प्राकृत भाषा के अभिलेखों में, शिलापट्ट और पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही मान्यताओं में।

“पश्चिमी मानकों तथा स्वातन्त्रय उपरान्त उनके देशी अनुयायियों के द्वारा भारतीय संदर्भ में विश्वास मौलिक रूप से 'परम्पराओं' से ही जुड़ा हुआ है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है और यह कह पाना की कोई 'परम्परा' इस निश्चित दिन से प्रारम्भ हुई या जन्मी शायद हास्यापद ही होगा। इसीलिए जब हम भारत और उसकी आदि काल से चली आ रही परम्पराओं की निरन्तरता को केन्द्र में रख कर देखते है तो यह समस्त प्रश्न ही अपने आप में रोचक हो जाता है कि भारतीय इतिहास को उसकी परम्पराओं में कितना खोजा जाना चाहिए और साक्ष्यों को उसमें कैसे समाविष्ट किया जाना चाहिए।”

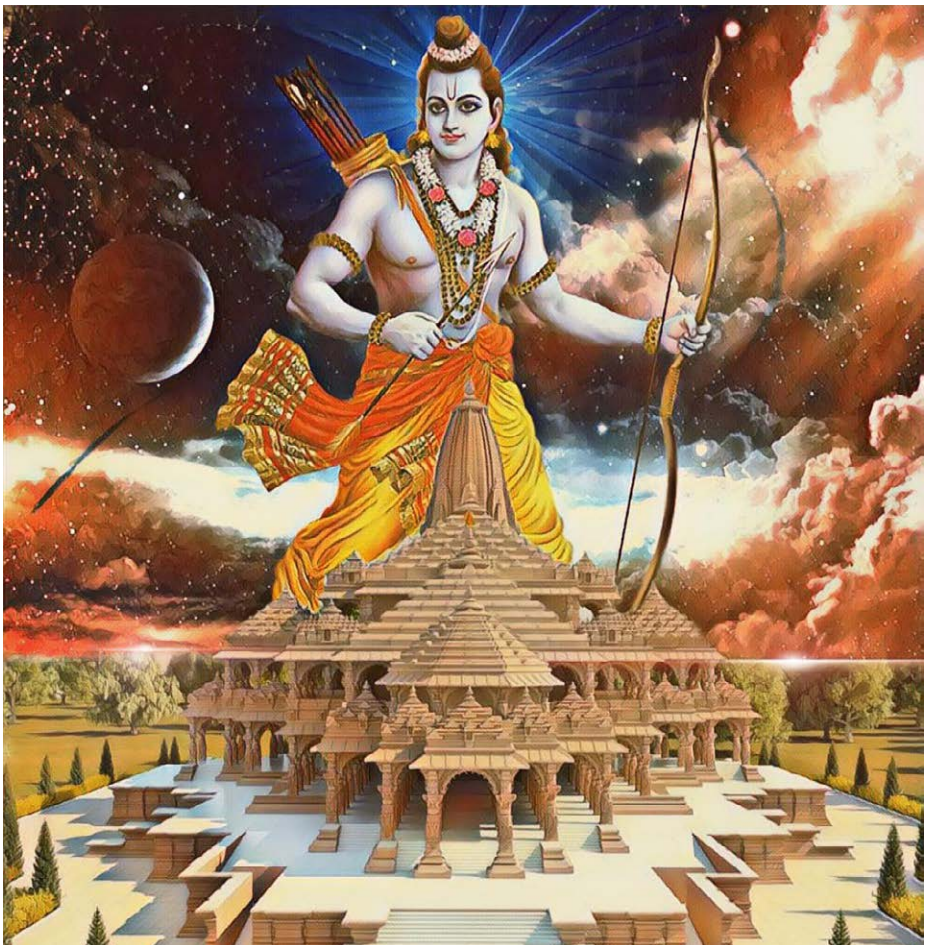

पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
दी.द.उ.गो.वि.वि., गोरखपुर
सदस्य, आई0सी0एच0आर0, नई दिल्ली

इन्हीं परम्पराओं में, जैसा मेरा मत हे कि विश्वास निहित है, जिसका खण्डकाल भारतीय संदर्भ में सुनिश्चित किया जाना लगभग असम्भव है, पर यह अवश्य ही सत्य है कि वे अपने मूल में अनगिनत चुनौतियों के साथ जीवित है। इसी जीवन्तता से जुड़ी है ''अयोध्या'' जो भारतीय परम्परा एवं विश्वास के सात प्रमुख केन्द्रों में एक विशेष महत्व रखती है और इसी से जुड़ी है विश्वास की वह डोर जिसके केन्द्र 'राम' हैं, अनगिनत भारतीयों के ही नहीं अपितु अन्य धर्मावलम्बियों के भी।

प्रश्न उठता है कि कोई आक्रान्ता किसी विश्वास की स्थली को चोट क्यों और किसलिए पहुचाता है। उत्तरर प्रश्न में ही निहित है कि भारत जो अपने समस्त इतिहास में कभी भी धर्मशासित (Theocratic) राज्य नहीं रहा, अर्थात न ही इस देश के राजाओं ने कभी तलवार के आधार पर धर्म परिवर्तन किये और न ही कभी किसी के विश्वासों के प्रतीक को बाह्य आक्रमण कर तोड़ने का कार्य किया। उस भारत का सामना एक ऐसी सत्ताा से हो रहा था जो धार्मिक उन्माद के लिए विश्व विख्यात थी और तलवार के जोर से अन्य के विश्वासों को तोड़ने के सिद्धान्त पर आधारित थी। अयोध्या इसी विश्वास का मूल केन्द्र था, अतः उसे दंश झेलना पड़ा।

रहा प्रश्न अयोध्या के इतिहास का और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, खासकर उन विद्वानों के लिए जो मात्र साक्ष्य को ही स्वीकारते हैं, और अपनी दृष्टि से ही उसका विवरण भी प्रस्तुत कर देते है ऐसे इतिहासकारों का प्रत्युत्तर लाला सीताराम 'भूप' के एक महान ग्रन्थ से दिया जा सकता है। अयोध्या पर प्रथम लेख 'हिस्ट्री आफ अयोध्या' लाला सीताराम भूप के द्वारा लिखा गया जो, 1928 में Allahabad University Studies-Vol. IV में प्रकाशित हुआ। यह लेख श्रीमान महामहोपाध्याय डा0 गंगा नाथ झा की अनुमति उपरान्त प्रकाशित हो पाया था। तदउपरान्त 1932 में ''हिन्दुस्तान एकेडमी'' ने इसका विस्तार रूप 250 पृष्ठों में प्रकाशित किया। इतिहास लेखन की आधुनिक तथा वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार वे हमें अपने स्त्रोतों के विषय में भी बताते हैं, जहाँ से उन्होंने सामग्री एकत्रित की थी। इस पुस्तक के पहले अध्याय 'अयोध्या की महिमा' के अन्तर्गत अयोध्या के नामकरण, यथा अवध, साकेत के साथ ही उत्तरर कोशल (कोसल) और इसके इक्ष्वाकु वंशियों की राजनीतिक एवं धार्मिक विरासत के साथ ही सूर्यवंश तथा गुप्तवंशीय शासकों की विरासत का उल्लेख किया गया है। इन तथ्यों पर प्रकाश डालने हेतु लाला सीताराम भूप द्वारा अवध गज़ेटियर, सी0आई0 वैध की प्राथमिक स्त्रोतों पर आधारित 'हिन्दू भारत का अंत' और उर्दू ग्रन्थ मदीनतुल-औलिया को उल्लेखित किया गया है।

दूसरा अध्याय 'उत्तर कोशल और अयोध्या की स्थिति' में पुनः वैज्ञानिक इतिहास की दृष्टि से, इस अध्याय में भी प्राथमिक स्त्रोतों का हो प्रयोग किया गया, जैसे-डा0 रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की 'हिस्ट्री आफ डेक्कन' से लेकर कालीदास के 'मेघदूत', रघुवंश और फिर रत्नावली से ह्वेनचांग, भगवत्पुराण, कनिंघम, वाल्मीकि रामायण से लेकर बौद्ध ग्रन्थ, दीघनिकाय और सुमंगलविलासिनी एवं आधुनिक इतिहास शोध पत्रिका 'जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी' से भी उल्लेख है। वे वृहद संहिता जैसे ग्रन्थों के अध्ययन से भी विषय से सम्बन्ध संदर्भ जुटाने में भी सफल रहे हैं।

तृतीय अध्याय में लाला जी ने 'प्राच्य अयोध्या' के विषय में पूरी जानकारी दी है, जिसमें अयोध्या को खण्ड कालों में

विभाजित कर ऐतिहासिक जानकारी दी गयी है। इस खण्ड में वे अयोध्या पर व्यूहलर तथा वेबर के मतों का प्रमाणिकता से खण्डन करते हैं। यह अध्याय अयोध्या को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय जिसका शीर्षक 'आज कल की अयोध्या' है में वे आधुनिक काल और समकालीन अयोध्या का वर्णन करते हैं, और पॉचवां अध्याय 'अयोध्या के आदिम निवासी' बहुत ही सार-गर्भित है। इसमें लाला जी के द्वारा वाल्मीकि रामायण, पुराणों के साथ-साथ अवध गजेटियर, विन्सेंट स्मिथ कृत 'अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया', नेस्फील्ड कृत 'ब्रीफ रिव्यू आफ द कस्टम सिस्टम आफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेस एण्ड अवध' तथा शेरिंग कृत 'हिन्दू कास्ट्स' का प्रयोग लाला जी द्वारा किया गया है। छठवें किन्तु संक्षिप्त अध्याय में पुनः एक बार 'वेदों में अयोध्या' का उल्लेख का सविस्तार वर्णन है। सातवें अध्याय में सबसे महत्वपूर्ण विवरण है जल प्रलय का। यहाँ वे भारतीय धार्मिक वांग्मय के साथ ही इस्लाम और ईसाई धर्मों में बिल्कुल ऐसी ही कथा के अंश को प्रस्तुत करते हैं। आठवॉ अध्याय 'अयोध्या और जैन धर्म' से सम्बन्धित है। लाला जी निश्चित ही इस कार्य को तार्किक परिपाटी तक पहुॅचाते दिखते हैं। इस अध्यायों से पौराणिक कालों के बाद का इति-क्रम भी सफलतापूर्वक स्थापित हो जाता है और वृहद भारतीय पृष्ठभूमि में वे अयोध्या के इतिहास को सही व क्रमिक तरीके से स्थित कर लेते हैं।

इसी प्रकार वे अयोध्या में जन्म स्थान के संदर्भ में भी वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुए हमें महत्वपूर्ण और दिलचस्प जानकारी देते हैं। सर्वप्रथम वे जानकारी देते हैं कि जिस टीले पर जन्म स्थान की मस्जिद बनी है उसे यज्ञ वेदी कहते है, इस टीले में से जले-जले काले चावल खोदकर निकाले जाते थे और कहा जाता था कि ये चावल राजा दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ के है। इसी पुस्तक के 12वॉ अध्याय 'भारत में मुस्लिम राज्य स्थापना से पहले अयोध्या पर मुस्लिमों के आक्रमण' हैं। उन्होंने इस संक्रमण काल के महत्व को रेखांकित करते हुए ही इसे अलग अध्याय में विश्लेषित किया है। इसमें लाला जी ने कई महत्वपूर्ण बातें उठायी और तथ्य स्पष्ट किये हैं, जिन पर प्रायः प्रकाश नहीं पड़ता है। जैसे मुस्लिम ग्रन्थों में प्रायः यह लिखा गया है कि यहाँ शुरू से ही मुस्लिम आबादी थी। वे अबुल फजल के आधार पर इस कथन को काटते हैं। इसके अतिरिक्त प्रामाणिक स्त्रोतों पर वे स्पष्ट करते है कि सय्यद-सालार मसऊद गाज़ी कभी अयोध्या नहीं आया था।

इसी ग्रन्थ में लाला जी 1528 की घटना का विवरण है कि कैसे बाबर के आदेश पर मीरबकी ताशकंदी ने राम मन्दिर ध्वस्त करके मस्जिद का निर्माण किया, कैसे इसके खम्भें मस्जिद में मौजूद आज भी पुराने ढ़ांचे की गवाही देते हैं। इस महत्वपूर्ण विश्लेषण में उन्होंने पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ-साथ 'तारीख़ पारीना मदीनतुल औलिया' और बालकराम विनायक कृत 'कनकभवन रहस्य' का भी उपयोग किया है। इसके उपरान्त वे ऐतिहासिक साक्ष्यों पर जन्मस्थान और मस्जिद में सबसे पहले विवाद का वर्णन करते हैं-'गुलाम हुसैन नाम का एक सुन्नी फकीर ने सुन्नियों को यह कहकर भड़काया कि औरंगजेब ने गढ़ी में एक मस्जिद बनवा दी थी उसे बैरागियों ने गिरा दिया है। तदोपरान्त यहाँ पहला झगड़ा हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य दर्ज हुआ। इसी प्रकरण के कारण यह ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इसी के जानकारी के आधार पर माननीय उच्च न्यायालय, उत्तरर प्रदेश ने इस प्रकरण पर अपना निर्णय दिया था। अन्त में लाला जी 'अंग्रेजी राज्य में अयोध्या' पर भी प्रकाश डालते हैं जो पूर्णतया स्त्रोतों पर ही आधारित है।

इतिहास के वे जानकार जो भारतीय इतिहास की परम्परा की धारा को नहीं स्वीकारते उन्हें अयोध्या की वास्तविकता से परिचित कराने हेतु लाला सीताराम भूप द्वारा रचित अयोध्या का इतिहास देखने की आवश्यकता है। अन्त में लाला भूपत राय के एक कथन से समस्त प्रकरण को समझना बेहतर होगा, उन्होंने एक वस्तुपरख इतिहासकार में रूप में 1928 में कहा था ''अयोध्या में इतिहास की सामग्री दबी पड़ी है जो पुरातत्व विभाग की खोज से निकलेगी, परन्तु जो कुछ इस ग्रन्थ में लिखा गया है उससे यदि इतिहास के मर्मज्ञों का ध्यान इस पुरानी उजड़ी नगरी की ओर आकर्षित हो तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूॅगा।'

उपरोक्त से यह समझा जा सकता है कि इतिहास के वे जानकार जो भारतीय इतिहास की परम्परा की धारा को नहीं स्वीकारते उन्हें अयोध्या की वास्तविकता से परिचित कराने हेतु लाला सीताराम भूप द्वारा रचित अयोध्या का इतिहास देखने की आवश्यकता है। अन्त में लाला भूपत राय के एक कथन से समस्त प्रकरण को समझना बेहतर होगा, उन्होंने एक वस्तुपरख इतिहासकार में रूप में 1928 में कहा था ''अयोध्या में इतिहास की सामग्री दबी पड़ी है जो पुरातत्व विभाग की खोज से निकलेगी, परन्तु जो कुछ इस ग्रन्थ में लिखा गया है उससे यदि इतिहास के मर्मज्ञों का ध्यान इस पुरानी उजड़ी नगरी की ओर आकर्षित हो तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूॅगा।'' इसी मूल वाक्य से आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ और ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधारों पर ही अयोध्या की आत्मा और भारतीयों का विश्वास, जिस पर 1528 में चोट पहुंचायी गई थी पुनः स्थापित हो सका।

सामासिक संस्कृति

डॉ भुवन मोहिनी

आज जिस भारतीय संस्कृति का विराट स्वरूप हम देख रहे हैं वह किसी एक दिन अथवा एक समय में विकसित नही हुई यह ऐसी आबोहवा में पनपी है जो सम्पूर्ण भूमण्डल पर दुर्लभ है जिस प्रकार हज़ारों साल नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से पृथ्वी की देह का निर्माण हुआ उसी तरह हज़ारों अजस्र संस्कृतियों के समागम से भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है इसी कारण हमारी संस्कृति सामासिक संस्कृति कहलाती है। देव,असुर, यक्ष, गंधर्व, वानर, शक, हूण, मुग़ल, अंग्रेज और भी न जाने कितनी जातियों और समुदायों का योगदान इस विराट संस्कृति में समाहित हुए और यह सबको अपने में विलीन करते हुए एक विराट स्वरूप में आज भी विश्व वंदनीय बनी हुई है।

लेखिका प्रख्यात कवयित्री एवं संस्कृति चिंतक हैं।

हमारे आचार विचार व्यवहार को संस्कृति की संज्ञा दी गयी है हज़ारों वर्षों से हम भारतीय जिन परंपराओं का पालन करते आ रहे हैं उन्हें संस्कृति कहा गया है। हमारे ऋषियों मुनियों द्वारा मानवीय आचार विचार की जो संहिता निर्धारित की वह हमारी संस्कृति विश्व वन्दित है,आदिकाल से ले कर आज तक विश्व विरक्त मानवीय मन हमारी संस्कृति का मुँह देखता है उसका कारण मात्र यह है कि हमारी संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा पर अवस्थित है। विश्व की हज़ारों सभ्यताएँ जब युद्धों तलवारों और रक्त पिपासु मनों के भीतर विकसित हो रही थी उस समय हमारी संस्कृति वेद वेदांग उपनिषदों के आवरण में अपने अस्तित्व में आ रही थी।यही कारण है की सम्पूर्ण विश्व ने भोग को महत्व दिया है और हमने त्याग को **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधह कस्वस्विद धनम'** हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है और यही विश्वकल्याण का स्रोत भी।

आज जिस भारतीय संस्कृति का विराट स्वरूप हम देख रहे हैं वह किसी एक दिन अथवा एक समय में विकसित नही हुई यह ऐसी आबोहवा में पनपी है जो सम्पूर्ण भूमण्डल पर दुर्लभ है जिस प्रकार हज़ारों साल नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से पृथ्वी की देह का निर्माण हुआ उसी तरह हज़ारों अजस्र संस्कृतियों के समागम से भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है इसी कारण हमारी संस्कृति सामासिक संस्कृति कहलाती है। देव,असुर, यक्ष, गंधर्व, वानर, शक, हूण, मुग़ल,अंग्रेज और भी न जाने कितनी जातियों और समुदायों का योगदान इस विराट संस्कृति में समाहित हुए और यह सबको अपने में विलीन करते हुए एक विराट स्वरूप में आज भी विश्व वंदनीय बनी हुई है। जैसे जैसे सभ्यताएँ आयी वैसे वैसे इसके स्वरूप में परिवर्तन होता गया और यह नवीनता के सोपानो पर चढ़ती रही।

हमारी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि यह समयानुकूल परिवर्तित होती रही कहा भी गया है 'क्षणे-क्षणे य नवतामुपैटति तदैव रूपम रमणीयता' अर्थात जो क्षण-क्षण अपना रूप बदलती रहती है वही रमणीय है। हमारी संस्कृति भी इसी कारण विश्व वन्दित है। वर्तमान काल सांस्कृतिक क्षरण का काल कहा जाता है जिसका मूल कारण वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और अर्थवाद है। आज मनुष्य अति भौतिकवादी विचारों के कारण मूल सभ्यता से विलग होता जा रहा है यही कारण है कि संस्कृति पर्व जैसे उत्सवों की आवश्यकता आन पड़ी है।

हम भूल चुके हैं कि जीवन और संसार मिथ्या है सत्य केवल सनातन विचार हैं जो मनुष्य को मनुष्यता का आभास कराते हैं। हम जीवन को केवल अर्थोपार्जन का साधन माँ रहे जबकि इससे अलग हमारी संस्कृति पुरुषार्थ साधन को जीवन का उसदेश्य मानती है। जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष कहे गए हैं जिनका समन्वय ही सुखद जीवन का आधार है किन्तु दुर्भाग्य वश हमने जीवन में इन चारों का समन्वय तोड़ दिया है आज धर्म के नाम पर राजनीति भ्रष्टाचार लूट मची है,अर्थ की उपासना ने छल प्रपंच अनाचार को जन्म दिया काम का अर्थ केवल व्यभिचार हो गया है और मोक्ष के नाम पर केवल ढकोसला बचा है इन्ही विसंगतियों को दूर करने के लिए आज वैचारिक आंदोलनो की आवश्यकता है जो संस्कृति पर्व के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है आशा है हम ऐसे भारत के पुनर्निर्माण में अपना योगदान देंगे जो प्राचीन परम्पराओं की परिकल्पना पर अवस्थित होगी।

सांस्कृतिक भारत का आधार गीताप्रेस

शताब्दी वर्ष की ओर अग्रसर सनातन यात्रा

संजय तिवारी

पर्व त्यौहारों से लेकर लघुसिद्धान्त कौमुदी, पुराणो, उपनिषदों और सभी आर्ष ग्रंथों की प्रमाणिकता तब तक सिद्ध नहीं मानी जाती जब तक उनकी पुष्टि गीता प्रेस से नहीं हो जाती। आम भारतीय अपनी हर आस्तिक और आर्ष जिज्ञासा को शांत करने के लिए गीता प्रेस की ही शरण में आता है। वह चाहे मानस के अनुत्तरित प्रश्न हों या गीता और श्रीमद भागवत के गूढ़ रहस्य, या फिर उपनिषद् की मीमांसा या फिर लघुसिद्धान्त कौमुदी और भारतीय व्याकरण के सूत्र या फिर दैनिक पूजा पाठ की समस्या, या फिर कोई भी ऐसी शंका जिसको जाननं जरुरी है, सभी का समाधान गीता प्रेस से ही हो सकता है।

लेखक भारत संस्कृति न्यास के अध्यक्ष और संस्कृति पर्व के संस्थापक संपादक हैं।

गीताप्रेस शब्द जेहन में आते ही एक ऐसी तस्वीर उभर कर सामने आती है मानस को भारतीयता से भर देती है। भारत वर्ष की महान प्राचीन गौरवशाली परम्परा और आधार ग्रंथो के बारे में यदि पूरी दुनिया आज कोई भी जानकारी पा सकती है तो यह इस महान संस्था की ही देन है। गीता प्रेस केवल एक मुद्रण और प्रकाशन संस्थान भर नहीं है बल्कि एक ऐसी राजधानी बन चुका है जहा से अपनी जानकारी पुख्ता कर के ही भारतीय सनातन समाज संतुष्ट हो पाता है। यहां से कल्याण पत्रिका 95 वर्षों से निरंतर प्रकाशित हो रही है। 1923 में स्थापित गीताप्रेस अपने शताब्दी वर्ष की ओर अग्रसर है। इसी परिसर में 29 अप्रैल 1955 को लीला चित्र मंदिर का तत्कालीन राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी द्वारा उद्घाटन हुआ था। यहां भगवान् श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण, इनके जीवन कथालीला से जुड़े विविध प्रसंगों और देवी-देवताओं के हाथ से चित्र दर्शनीय हैं। सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति में स्थापित देवी-देवताओं के स्वरूपों की प्रामाणिक जानकारी देने का बहुत बड़ा काम गीताप्रेस ने किया है।

पर्व त्यौहारों से लेकर लघुसिद्धान्त कौमुदी, पुराणो, उपनिषदों और सभी आर्ष ग्रंथों की प्रमाणिकता तब तक सिद्ध नहीं मानी जाती जब तक उनकी पुष्टि गीता प्रेस से नहीं हो जाती। आम भारतीय अपनी हर आस्तिक और आर्ष जिज्ञासा को शांत करने के लिए गीता प्रेस की ही शरण में आता है। वह चाहे मानस के अनुत्तरित प्रश्न हों या गीता और श्रीमद भागवत के गूढ़ रहस्य, या फिर उपनिषद् की मीमांसा या फिर लघुसिद्धान्त कौमुदी और भारतीय व्याकरण के सूत्र या फिर दैनिक पूजा पाठ की समस्या, या फिर कोई भी ऐसी शंका जिसको जाननं जरुरी है, सभी का समाधान गीता प्रेस से ही हो सकता है। गीताप्रेस पूर्व में वेद के किसी पुस्तक का प्रकाशन नहीं करता था। अब यहाँ शुक्ल यजुर्वेद के प्रकाशन पर कार्य शुरू किया जा रहा है।

भारतीयता की गंगोत्री

वास्तव में गीता प्रेस वह विन्दु बन चुका है जिसे भारतीयता की गंगोत्री कह सकते हैं क्योकि मानस की कथा हो या कृष्ण चरित्र की गाथा या फिर गीता का ज्ञान , हर कथामृत रुपी गंगा इसी गंगोत्री से होकर गुजरती है. कल्पना कीजिये गीता प्रेस न होता तो रामचरित मानस और श्रीमद्भगवतगीता जैसे ग्रन्थ हर हिन्दू को कैसे उपलब्ध हो पाते। यह कोई सामान्य घटना नहीं है की लगभग एक हज़ार साल के गुलाम भारत के मानस को उसके प्राचीन गौरव से जोड़ कर आज ऐसा भारत बनाया जा चुका है जहा से पूरी दुनिया आध्यात्म, संस्कृति और सदाचार की शिक्षा ले रही है. आज यदि दुनिया योग दिवस मना रही है तो इसके पीछे भी पतांजलि के योग सूत्र से जुड़े हर साहित्य की उपलब्धता ही है जिसे इसी संस्था ने संभव बनाया है। भारत को आज की दुनिया जिन कारणों से पसंद करने लगी है उनमे से प्रमुख कारण इसकी आध्यात्मिकता ही है।

70 करोड़ पुस्तके

यह अद्भुत है कि आज के इस घोर आर्थिक युग में कोई संस्था किसी लाभ के 70 करोड़ पुस्तके उस मूल्य पर लोगों को उपलब्ध कराया है जिस पर खाली सादा कागज़ मिलना संभव नहीं है। यह सच है कि राष्ट्र का निर्माण वहा की राजनीतिक से इच्छा शक्ति के ही हो पाता है लेकिन स्वस्थ और विकसित राष्ट्र बनाने के लिए जिन संस्कारो और मूल्यों की आवश्यकता होती है उन सभी को गीता प्रेस उपलब्ध कराने में सक्षम है। इस संस्थान की स्थापना के बाद जब भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने कल्याण पत्रिका पहला अंक महात्मा गांधी के सामने रखा तो गांधीजी ने उनको सुझाव दिया कि इस पत्रिका में कभी भी कोई विज्ञापन और किसी प्रकार की पुस्तक समीक्षा न प्रकाशित करें। यह अद्भुत है कि कल्याण जैसी अति लोकप्रिय पत्रिका जो आज लाखो लोगो तक हर महीने पहुंच रही है उसमे कभी कोई विज्ञापन पुस्तक समीक्षा नहीं प्रकाशित होती। गीताप्रेस यदि चाहता तो केवल कल्याण के आंको के विज्ञापन से करोडो रूपये कमा सकता था लेकिन आरम्भ में ही स्थापित सिद्धांत से आज भी इस संस्था ने कोईसमझौता नहीं किया है। इस समय गीता प्रेस से 15 भारतीय भाषाओं में 1800 प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है।

मुद्रण और प्रकाशन का कीर्तिमान

गीताप्रेस तक 1880 प्रकार की पुस्तके प्रकाशित करने का कीर्तिमान स्थापित है। यह दुनिया का शायद अकेला ऐसा संस्थान है जहा से इतनी पुस्तके एक ही परिसर से प्रकाशित हो रही हैं। पंद्रह भाषाओ में यहाँ से प्रकाशन चल रहा है। इनमे से एक भाषा नेपाली भी। है रामचरितमानस एक ऐसा ग्रन्थ है जो अकेले ही 9 भाषाओ में छप रहा है। जहा तक कल्याण पत्रिका का प्रश्न है तो इसका हर साल का पहला अंक विशेषांक होता है। शेष 11 अंक हर महीने प्रकाशित होते है। इस बारे में प्रेस प्रबंधन से जुड़े आचार्य लालमणि तिवारी जी बताते है कि कल्याण के पुराने अनेक अंक ऐसे है जिनके विशेषांकों की अभी भी बहुत मांग रहती है। कई विशेषांकों के नए संस्करण भी निकाले जा चुके है। कल्याण के अभी तक 1140 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। कल्याण की अभी तक कुल साढ़े सोलह करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं। यहाँ यह भी बता देना समीचीन होगा कि कल्याण का सम्पादकीय कार्यालय काशी में है । वहां श्री राधेश्याम जी खेमका के सम्पादकत्व में सभी कार्य हो रहे थे। श्री खेमका जी के गोलोकगमन के बाद अब सम्पादकीय दायित्व प्रेमप्रकाश जी कक्कड़ संभाल रहे हैं।

145000 वर्गफीट का परिसर

आज गीता प्रेस का कुल परिसर 145000 वर्ग फ़ीट में है। इसमे केवल प्रकाशन का कार्य हो रहा है। इसके अलावा 55000 वर्ग फ़ीट में व्यावसायिक परिसर है जिसमे वस्त्र वभाग एवं कर्मचारी आवास परिसर है। कुछ भवन किराए पर भी है। प्रेस का अपना भव्य शो रूम भी कार्य कर रहा है। गीता प्रेस का सारा कार्य अपने खुद के परिसर में ही हो रहा है। इस समय इसके पास वेव की 6 मशीने हैं। इनके अलावा एक दर्जन शीतफेड हैं किताबो की सिलाई के लिए चार विदेशी और काफी संख्या में देशी मशीने हैं। इनके अलावा भी छपाई, सिलाई और बाइंडिंग के लिए ढेर सारी मशीनें यहां उपलब्ध हैं। विश्व के प्रिंटिंग जगत में उपलब्ध अत्याधुनिक प्रणाली और तकनीक से जुड़े सभी संसाधन गीताप्रेस के पास हैं।

प्रमुख संत विभूतिया

गीता प्रेस के बारे में कहा जाता है की जो यहाँ झाड़ू भी लगाता है वह किसी भी शाष्टीय विद्वान के बराबर का ज्ञान पा लेता है , वर्त्तमान कर्मचारी विवाद को छोड़ दे तो यह उक्ति काफी हद तक

सही लगाती है। गीता, श्रीमद भागवत आदि ग्रंथो के प्रकाशन में सम्पादकीय और अनुवाद के बाद ही शांतनु द्विववेदी को दुनिया ने परम पूज्य स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के रूप में पाया। स्वयं सेठ जी जय दयाल जी गोयन्दका, स्वामी रामसुख दास जी महाराज, भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार, और आचार्य नंदा दुलारे वाजपई जी आज पूरी दुनिया में जाने गए तो यह इसी की दें है। आचार्य नंद दुलारे वाजपई यही कल्याण के सम्पादकीय विभाग से निकल कर कुलपति के पद पर आसीन हुए। स्वयं करपात्री जी और महामना मदन मोहन मालवीय के साथ महात्मा गांधी जी इस संस्था से गहरे तक जुड़े रहे। एक शास्त्रीय विवाद में तो मालवीय जी और करपात्री जी के बीच जयदयाल जी को ही सरपंच बनाया गया था।

भारत रत्न से भी अरुचि

देश की स्वाधीनता के बाद डॉ, संपूर्णानंद, कन्हैयालाल मुंशी और अन्य लोगों के परामर्श से तत्कालीन केंद्रीय गृह मंत्री गोविंद वल्लभ पंत ने भाई जी को `भारत रत्न' की उपाधि से अलंकृत करने का प्रस्ताव रखा लेकिन भाई जी ने इसमें भी कोई रुचि नहीं दिखाई।

कोई प्रचार नहीं सिर्फ त्याग

इस संस्थान की सबसे बड़ी विशेषता इसका सेवा भाव और त्याग है। संस्था का कोई ट्रस्टी संस्था से किसी प्रकार की सहायता नहीं लेता. सभी अपने आर्थिक संसाधन से ही संता का कार्य करते है। यहाँ तक की प्रतिदिन प्रेस में बैठ कर यहाँ का काम देखने वाले बैजनाथ जी अग्रवाल पिछले 65 वर्ष से व्यवस्था देख रहे है वह रोज अपने संसाधन से प्रेस आते है और जाते है लेकिन आज तक एक पैसे भी उन्होंने अपने लिए प्रेस से नहीं लिया है। इसी तरह राधेश्याम जी खेमका वाराणसी से कल्याण के सम्पादन का कार्य कर रहे हैं लेकिन ट्रस्टी होते हुए भी कभी एक पाई अपने ऊपर खर्च नहीं होने दिया। ख्ह् ट्रस्ट में वंशानुक्रम की कोई परम्परा भी नहीं है। इस समय राधे श्याम जी खेमका ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं। विष्णु प्रसाद चांदगोठिया सचिव हैं। बैजनाथ जी अग्रवाल गोरखपुर में प्रेस की व्यवस्था देख रहे हैं। केशराम जी अरवल कोलकाता में रहते हैं और कल्याण कल्पतरु के संपादक भी हैं। देवीदयाल जी , ईश्वर प्रसाद पटवारी नारायण अजीतसरिया अन्य ट्रस्टी हैं।

गीताप्रेस के संस्थापक जयदयाल गोयन्दका

जयदयाल गोयन्दका का जन्म राजस्थान के चुरू में ज्येष्ठ कृष्ण 6, सम्वत् 1942 (सन् 1885) को श्री खूबचन्द्र अग्रवाल के परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इन्हें गीता तथारामचरितमानस ने प्रभावित किया। वे अपने परिवार के साथ व्यापार के उद्देश्य से बांकुड़ा(पश्चिम बंगाल) चले गए। बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा तो, उन्होंने पीड़ितों की सेवा का आदर्श उपस्थित किया।

उन्होंने गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन करने के बाद अपना जीवन धर्म-प्रचार में लगाने का संकल्प लिया। इन्होंने कोलकाता में 'गोविन्द-भवन' की स्थापना की। वे गीता पर इतना प्रभावी प्रवचन करने लगे थे कि हजारों श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर सत्संग का लाभ उठाते थे। 'गीता-प्रचार' अभियान के दौरान उन्होंने देखा कि गीता की शुद्ध प्रति मिलनी दूभर है। उन्होंने गीता को शुद्ध भाषा में प्रकाशित करने के उद्देश्य से सन् 1923 मेंगोरखपुर में गीता प्रेस की स्थापना की। उन्हीं दिनों उनके मौसेरे भाई हनुमान प्रसाद पोद्दारउनके सम्पर्क में आए तथा वे गीता प्रेस के लिए समर्पित हो गए। गीता प्रेस से 'कल्याण' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। उनके गीता तथा परमार्थ सम्बंधी लेख प्रकाशित होने लगे। उन्होंने 'गीता तत्व विवेचनी' नाम से गीता का भाष्य किया। उनके द्वारा रचित तत्व चिन्तामणि, प्रेम भक्ति प्रकाश, मनुष्य जीवन की सफलता, परम शांति का मार्ग, ज्ञान योग, प्रेम योग का तत्व, परम-साधन, परमार्थ पत्रावली आदि पुस्तकों ने धार्मिक-साहित्य की अभिवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान किया है। उनका निधन 17 अप्रैल 1965 को ऋषिकेश में गंगा तट पर हुआ।

गोविन्द-भवन-कार्यालय, कोलकाता

यह संस्थाका प्रधान कार्यालय है जो एक रजिस्टर्ड सोसाइटी है। सेठजी व्यापार कार्यसे कोलकाता जाते थे और वहाँ जानेपर सत्संग करवाते थे। सेठजी और सत्संग जीवन-पर्यन्त एक-दूसरेके पर्याय रहे। सेठजीको या सत्संगियोंको जब भी समय मिलता सत्संग शुरू हो जाता। कई बार कोलकातासे सत्संग प्रेमी रात्रिमें खड़गपुर आ जाते तथा सेठजी चक्रधरपुरसे खड़गपुर आ जाते जो कि दोनों नगरोंके मध्यमें पड़ता था। वहाँ स्टेशन के पास रातभर सत्संग होता, प्रातः सब अपने-अपने स्थानको लौट जाते। सत्संगके लिये आजकलकी तरह न तो मंच बनता था न प्रचार होता था। कोलकातामें दुकानकी गद्दियोंपर ही सत्संग होने लगता। सत्संगी भाइयोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। दुकानकी गद्दियोंमें स्थान सीमित था। बड़े स्थानकी खोज प्रारम्भ हुई। पहले तो कोलकाताके ईडन गार्डेनके पीछे किलेके समीप वाला स्थल चुना गया लेकिन वहाँ सत्संग ठीकसे नहीं हो पाता था। पुनः सन् 1920 के आसपास कोलकाताकी बाँसतल्ला गलीमें बिड़ला परिवारका एक गोदाम किराये पर मिल गया और उसे ही गोविन्द भवन (भगवान् का घर) का नाम दिया गया। वर्तमानमें महात्मा गाँधी रोडपर एक भव्य भवन 'गोविन्द-भवन' के नामसे है जहाँपर नित्य भजन-कीर्तन चलता है तथा समय-समयपर सन्त-महात्माओंद्वारा प्रवचनकी व्यवस्था होती है।

पुस्तकोंकी थोक व फुटकर बिक्रीके साथ ही साथ हस्तनिर्मित वस्त्र, काँचकी चूडियाँ, आयुर्वेदिक ओषधियाँ आदिकी बिक्री उचित मूल्यपर हो रही है।

गीताप्रेस - गोरखपुर

कोलकातामें श्री सेठजी के सत्संगके प्रभावसे साधकोंका समूह बढ़ता गया और सभीको स्वाध्यायके लिये गीताजीकी आवश्यकता हुई, परन्तु शुद्ध पाठ और सही अर्थकी गीता सुलभ नहीं हो रही थी। सुलभतासे ऐसी गीता मिल सके इसके लिये सेठजीने स्वयं पदच्छेद, अर्थ एवं संक्षिप्त टीका तैयार करके गोविन्द-भवनकी ओरसे कोलकाताके वणिक प्रेससे पाँच हजार प्रतियाँ छपवायीं। यह प्रथम संस्करण बहुत शीघ्र समाप्त हो गया। छः हजार प्रतियोंके अगले संस्करण का पुनर्मुद्रण उसी वणिक प्रेससे हुआ। कोलकातामें कुल ग्यारह हजार प्रतियाँ छपीं। परन्तु इस मुद्रणमें अनेक कठिनाइयाँ आयीं। पुस्तकोंमें न तो आवश्यक संशोधन कर सकते थे, न ही संशोधनके लिये समुचित सुविधा मिलती थी। मशीन बार-बार रोककर संशोधन करना पड़ता था। ऐसी चेष्टा करनेपर भी भूलोंका सर्वथा अभाव न हो सका। तब प्रेसके मालिक जो स्वयं सेठजीके सत्संगी थे, उन्होंने सेठजीसे कहा – किसी व्यापारीके लिये इस प्रकार मशीनको बार-बार रोककर सुधार करना अनुकूल नहीं पड़ता। आप जैसी शुद्ध पुस्तक चाहते हैं, वैसी अपने निजी प्रेसमें ही छपना सम्भव है। सेठजी कहा करते थे कि हमारी पुस्तकोंमें, गीताजीमें भूल छोड़ना छूरी लेकर घाव करना है तथा उनमें सुधार करना घावपर मरहम-पट्टी करना है। जो हमारा प्रेमी हो उसे पुस्तकोंमें अशुद्धि सुधार करनेकी भरसक चेष्टा करनी चाहिये। सेठजीने विचार किया कि अपना एक प्रेस अलग होना चाहिये, जिससे शुद्ध पाठ और सही अर्थकी गीता गीता-प्रेमियोंको प्राप्त हो सके। इसके लिये एक प्रेस गोरखपुरमें एक छोटा-सा मकान लेकर लगभग 10 रुपये के किराये पर वैशाख शुक्ल 13, रविवार, वि. सं. 1980 (23 अप्रैल 1923 ई0) को गोरखपुरमें प्रेसकी स्थापना हुई, उसका नाम गीताप्रेस रखा गया। उससे गीताजीके मुद्रण तथा प्रकाशनमें बड़ी सुविधा हो गयी। गीताजीके अनेक प्रकारके छोटे-बड़े संस्करणके अतिरिक्त श्रीसेठजीकी कुछ अन्य पुस्तकोंका भी प्रकाशन होने लगा। गीताप्रेससे शुद्ध मुद्रित गीता, कल्याण, भागवत, महाभारत, रामचरितमानस तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ सस्ते मूल्य पर जनताके पास पहुँचानेका श्रेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको ही है। गीताप्रेस पुस्तकोंको छापनेका मात्र प्रेस ही नहीं है अपितु भगवान की वाणीसे निःसृत जीवनोद्धारक गीता इत्यादिकी प्रचारस्थली होनेसे पुण्यस्थलीमें परिवर्तित है। भगवान शास्त्रोंमें स्वयं इसका उद्घोष किये हैं कि जहाँ मेरे नामका स्मरण, प्रचार, भजन-कीर्तन इत्यादि होता है उस स्थानको मैं कभी नहीं त्यागता।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेश

गीताजी के प्रचारके साथ ही साथ सेठजी भगवत्प्राप्ति हेतु सत्संग करते ही रहते थे। उन्हें एक शांतिप्रिय स्थलकी आवश्यकता महसूस हुई जहाँ कोलाहल न हो, पवित्र भूमि हो, साधन-भजनके लिये अति आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये उत्तराखण्डकी पवित्र भूमिपर सन् 1918 के आसपास सत्संग करने हेतु सेठजी पधारे। वहाँ गंगापार भगवती गंगाके तटपर वटवृक्ष और वर्तमान गीताभवनका स्थान सेठजीको परम शान्तिदायक लगा। सुना जाता है कि वटवृक्ष वाले स्थानपर स्वामी रामतीर्थने भी तपस्या की थी। फिर क्या था सन् 1925 के लगभगसे सेठजी अपने सत्संगियोंके साथ प्रत्येक वर्ष ग्रीष्म-ऋतुमें लगभग 3 माह वहाँ रहने लगे। प्रातः 4 बजेसे रात्रि 10 बजे तक भोजन, सन्ध्या-वन्दन आदिके समयको छोड़कर सभी समय लोगोंके साथ भगवत्-चर्चा, भजन-कीर्तन आदि चलता रहता था। धीरे-धीरे सत्संगी भाइयोंके रहनेके लिये पक्के मकान बनने लगे। भगवत्कृपासे आज वहाँ कई सुव्यवस्थित एवं भव्य भवन बनकर तैयार हो गये हैं जिनमें 1,000 से अधिक कमरे हैं और सत्संग, भजन-कीर्तनके स्थान अलग से हैं। जो शुरूसे ही सत्संगियोंके लिये निःशुल्क रहे हैं। यहाँ आकर लोग गंगाजीके सुरम्य वातावरणमें बैठकर भगवत्-चिन्तन तथा सत्संग करते हैं।

श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू

जयदयालजी गोयन्दकाने इस आवासीय विद्यालयकी स्थापना इसी उद्देश्यसे की कि बचपनसे ही अच्छे संस्कार बच्चोंमें पड़ें और वे समाजमें चरित्रवान्, कर्तव्यनिष्ठ, ज्ञानवान् तथा भगवत्प्राप्ति प्रयासी हों। स्थापना वर्ष 1924 ई0 से ही शिक्षा, वस्त्र, शिक्षण सामग्रियाँ इत्यादि आजतक निःशुल्क हैं। उनसे भोजन खर्च भी नाममात्रका ही लिया जाता है।

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान

जयदयालजी गोयन्दका पवित्रताका बड़ा ध्यान रखते थे। हिंसासे प्राप्त किसी वस्तुका उपयोग नहीं करते थे। आयुर्वेदिक औषधियोंका ही प्रयोग करते और करनेकी सलाह देते थे। शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणके लिये पहले कोलकातामें पुनः गीताभवनमें व्यवस्था की गयी ताकि हिमालयकी ताजा जड़ी-बूटियों एवं गंगाजलसे निर्मित औषधियाँ जनसामान्यको सुलभ हो सकें।

संस्कृत व्याकरण शास्त्र की शब्द-वैज्ञानिकता

वसिष्ठ और विश्वामित्र नामों का ज्ञानरहस्य

स्वामी राजेश्वराचार्य

गो, गंगा, गायत्री, गणेश पूजन (पंचायतन पूजन) से, नवावरण पूजन से, यौगिक क्रिया साधना से, वेदान्त पढ़ने से, दानादि करने से, सत्संगति करने से अथवा नवधा भक्ति करने से और स्वाध्याय करने से वास्तविक ज्ञान धीरे धीरे होने लगता है तब माया का आवरण धीरे धीरे हटने लगता है, उसी समय अन्तर्मुखी वृति तीव्रता से अनूकूल काम करने लगती है। कर्तापन हटने लगता है, साक्षीभाव जागने लगता है, उदासीन अवस्था की प्राप्ति होने लगती है, उसी वृत्ति के उदय होने से सत्त्वगुण के प्रकाश में सबकुछ धीरे धीरे सत्य भासने लगता है।

लेखक संस्कृत व्याकरण शास्त्र, श्रीमद्भागवतपुराण, वेदांत के आचार्य हैं।

वस्तुतः वसिष्ठ और विश्वामित्र हमारी ही सात्त्विक और राजसिक वृत्तियों के लक्षणों के नाम हैं। ये दोनों नाम हमारे मानसिक द्वंद्व और शांति के प्रतीक हैं।

वसिष्ठ-

वशवतां वशिनां श्रेष्ठः। वशवत् +इष्ठन् । (पाणिनिसूत्र- विन्मतोर्लुक ५/३/६५ इति 'वत्' प्रत्ययस्य लुक्, 'यस्येति च' सूत्रेण 'इकारस्य' लोपः) यद्वा वरिष्ठः । पृषोदरादित्वात् 'श्' स्थाने 'स्' साधुः। अस्य निरुक्तिर्यथा महाभारते १३/९३/८९ ।

'वशिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वशे वासगृहेष्वपि।
वशिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ इति विद्धि माम् ॥'

पुनश्च-

य आत्मनि, ब्रह्मणि 'वसन्' सन् ब्रह्मणि, आत्मनि सदा तिष्ठति एव स = 'वसिष्ठः' इति।

भाव- 'ब्रह्म में रहते हुए स्वयं को ब्रह्म जानकर ब्रह्म में स्थायित्व भाव से स्थिर हो गया है जो, अर्थात् एकाकार हो गया है जो ऐसी एकाकार वृत्ति का नाम 'वसिष्ठ' है।' यह एक गहन भाव है। अब सरल करके मैं उस अवस्था तक ले जाने की आरम्भिक बात करता हूँ -

वस्तुतः अन्तर्मुखी वृत्ति को 'वसिष्ठ' कहते हैं। ब्रह्मरूप प्रभु श्रीराम सहित जीवरूप लक्ष्मण को यानी हमारी जीवात्मा को विद्या देने का नाम वसिष्ठ है।

प्रश्न- जीवन लाभ क्या है?

सद्गुरु वचन से, देवों के पूजन से, पितरों के तर्पण से, मातापिता की सेवा से, ब्राह्मणों के पूजन से, गो, गंगा, गायत्री, गणेश पूजन (पंचायतन पूजन) से, नवावरण पूजन से, यौगिक क्रिया साधना से, वेदान्त पढ़ने से, दानादि करने से, सत्संगति करने से अथवा नवधा भक्ति करने से और स्वाध्याय करने से वास्तविक ज्ञान धीरे धीरे होने लगता है तब माया का आवरण धीरे धीरे हटने लगता है, उसी समय अन्तर्मुखी वृत्ति तीव्रता से अनूकूल काम करने लगती है। कर्तापन हटने लगता है, साक्षीभाव जागने लगता है, उदासीन अवस्था की प्राप्ति होने लगती है, उसी वृत्ति के उदय होने से सत्त्वगुण के प्रकाश में सबकुछ धीरे धीरे सत्य भासने लगता है, '**सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्**' अर्थात् सत्त्वाधिक्य से ज्ञान प्राप्त होने लगता है।

'ज्ञानान्मुक्तिः' ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है, अर्थात चतुर्थ पुरुषार्थ प्राप्त होता है।

उसी वृत्ति को 'वसिष्ठ' कहते हैं, जो ब्रह्म के मार्ग पर ले जाये और ब्रह्म साक्षात्कार कराते ही ब्रह्ममय बना दे। वसिष्ठ इस मन्वन्तर के ऋषि हैं।

विश्वामित्र-

विश्वमेव मित्रम् अस्य स - विश्वामित्रः

(विश्व अर्थात् संसार ही मित्र है जिसका उसे विश्वामित्र कहते हैं।)

(संसार का आशय 'चर्पटपंजरिका' में वर्णित है, और मित्र का विलोमार्थी भी होता है। यहाँ बाह्यवृत्ति की ओर संकेत है।)

(एक भिन्न अर्थ है - विश्व और मित्र दो देवताओं का एक साथ हो जाना, और विश्व संचालन में अहर्निश लगे रहना ही विश्व और मित्र दो देवताओं के नाम हैं)

पुनश्च - ब्रह्मरूप प्रभु श्रीराम को, जीवरूप लक्ष्मण सहित महामायारूप माँ जगज्जननी से मिलाने का कार्य विश्वामित्र का है। यानी हमारी जीवात्मा को माया से आबद्ध कराने का नाम है विश्वामित्र।

वस्तुतः बहिर्मुखी वृत्ति को 'विश्वामित्र' कहते हैं। यही विश्वामित्र गायत्री के द्रष्टा हैं, जिस गायत्री से ही आन्तरित वृत्तियों (संस्कारों) की शुद्धि की जाती है। शुद्धि करके अंततः वसिष्ठत्व प्राप्त करने की एक प्रेरणा है।

ये दोनों वृत्तियाँ हम सभी मनुष्यों में पाई जाती हैं।

औसतन ज्यादातर लोगों में 21वें वर्ष की अवस्था में जाग्रत हो जाती है अथवा कुंडली अनुसार कोई भी अवस्था हो, पूर्वजन्मों के संस्कारों का धीरे धीरे जागरण होना आरम्भ होने लगता है तो प्रायः व्यक्ति स्वतः अपने वास्तविक रूप में आने लगता है।

पूर्वसंस्कारोदय से कोई व्यक्ति अंतर्मुखी हो जाता है तो कोई बहिर्मुखी हो जाता है, तो कोई उभयमुखी हो जाता है।

विश्वामित्र अर्थात् बाह्य संसार या रजस्तत्त्वगुण वृत्ति है, इसी के दबाव से मनुष्य अपने तप, धन, उद्भिजविद्या और पद के बल पर एक नया ब्रह्मांड का निर्माण कर देने का अहंकार पाल लेता है। यह वृत्ति मिथ्या अहंकार को बढ़ावा देती है।

जैसे - 'मैं सबकुछ कर सकता हूँ, मेरे तो बड़े बड़े उद्योगपतियों, राजनायिकों और अधिकारियों से सघन परिचय हैं, मेरी प्रसिद्धि बड़ी है। मेरी उपलब्धियाँ सर्वाधिक हैं।' इस प्रकार मनुष्य अपनी सांसारिक उपलब्धियों को तोते की तरह बोलने लग जाता है। सम्मान की प्राप्ति न होने पर वह क्रोधित हो जाता है। वह मनुष्य जल्दी शांत होने का नाम नहीं लेता है।

मनुष्य उपर्युक्त सोच विचार वाला और स्वभाव वाला हो जाता है, उसी को निवृत्तिपरायण कर्मयोगी (साधक) अपने निष्कामवृत्ति से 'विश्वामित्र' वृत्ति को जीत लेता है। यह जीत लेना ही वसिष्ठत्व है। विश्वामित्र का वसिष्ठ में आना ही ज्ञान है। वसिष्ठत्व प्राप्त करना ही चतुर्थ पुरुषार्थ पाना है।

सर्वेभ्य ऋषिकल्पेभ्यो नमो नमः।

'राघव' शब्द की व्युत्पत्ति

अब मैं पाणिनीय सूत्रों से 'राघवः' पद की सिद्धि करने जा रहा हूँ-

'लङ्बिबंह्योर्नलोपश्च' (उणादि सूत्र 29) से लङ्ब धातु से कु प्रत्यय हुआ। यह कु प्रत्यय 'कुर्भ्रश्च' उणादि सूत्र 22 से अनुवर्तन किया गया। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से क् की इत् संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप हुआ। कित् होने से लङ्ब धातु के ङ् का लोप 'अनिदितां हल उपाधायाः क्ङिति' से हुआ।

अब- लघ् + उ = 'लघु' शब्द की उत्पत्ति हुई।

लघु के ल् को र् आदेश हुआ उसके लिए यह वार्तिक है- 'बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते' इससे ल् अक्षर को र् हुआ, अब 'रघु' शब्द की निष्पत्ति हुई।

यह कार्य व्याकरणशास्त्र का कृदन्त प्रकरण था।

अब हम तद्धित प्रकरण में पहुँचते हैं-

रघोरपत्यम् (रघु की संतान या वंशज) के अर्थ में रघु से अण् प्रत्यय 'तस्यापत्यम्' सूत्र से हुआ, 'ओर्गुणः'.सूत्र से रघु के उकार को 'ओ' गुण हुआ। तथा 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि स्वर 'र' के अकार को आकार आदेश हुआ, तत्पश्चात्- राघो+अ = 'राघव' 'एचोयवायावः' सूत्र से अयादि संधि होकर 'राघव' शब्द की उत्पत्ति हुई।

तदनन्तर 'राघव' में सुबन्त का 'सुँ' प्रत्यय लगकर अन्त्य उँ का 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' और 'तस्य लोपः' से लोप हुआ, अब 'सुँ' के 'स्' को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'. सूत्र से विसर्ग हुआ।

अब 'राघवः' पद बना, जिसका प्रयोग संस्कृत में सर्वत्र किया जाएगा।

भावार्थ - जो दुखभरे संसार सागर को अपने ज्ञान-विज्ञान और धैर्य से शीघ्रता से लाँघ जाए, पार कर जाए अर्थात् मुमुक्षु भाव रखकर परमपिता में लीन रहे, यह भाव जिसके हृदय में है उसी को 'राघवः' कहते हैं।

राजा रघु के वंशज मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी को 'राघव' कहते हैं। वे स्वयं परमपिता हैं। बोलिये- जय सियाराम।

सशक्त मातृत्व, समर्थ भारत

डा. अर्चना तिवारी

भारतीय सनातन हिन्दू वैदिक संस्कृति में मूल तत्त्व स्त्री है। यही स्त्री तत्व ही है जो भारत की प्राचीन गरिमा और मर्यादा को आज भी परिभाषित करता है। भारत की प्राचीन सभ्यता और प्रायः सभी वांग्मय यह प्रमाणित करते है की नारी की भूमिका से ही सृष्टि का समुन्नत विकास संभव है। जो भी समाज अपनी नारी शक्ति को उपेक्षित करता है उसका पतन बहुत जल्दी हो जाता है। यही कारण है कि हमारे देश में प्रारम्भ से ही यत्र नारयन्तु पूज्यन्ते , रमन्ते तत्र देवता का उद्घोष होता रहा है। ऐसी व्यवस्था हमारे यहाँ हज़ारो वर्षो से रही भी है। हमारी यह मातृशक्ति ही रही है जिसने आदिकाल से ही भारत को सशक्त एवं समुन्नत बनाया था। ज्यों ज्यों यह शक्ति उपेक्षित हुई , भारत की दुर्गति होती चली गयी। हमारा इतिहास साक्षी है कि इस मातृ शक्ति ने ही राम और कृष्ण जैसे महानायक देकर पृथ्वी का उद्धार किया। मां कौशल्या को इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में दिसि प्राची अर्थात वह पूर्व की दिशा जिससे सूर्य का उदय होता है, बताया है। मातृ ही वह संज्ञा है जो मातृका बनती है।

“भारत की नारी सदा अपने पति में भगवान शिव और श्री राम के दर्शन करती रही है। हमारे यह सांस्कृतिक मूल्य इस पतन की अवस्था में भी सुरक्षित हैं। मुस्लिम काल में हिंदू समाज के कई संप्रदायों ने महिलाओं को पर्दे में रखना आरंभ कर दिया। यह पर्दा प्रथा मुस्लिम समाज के आतंक से बचने के लिए जारी की गयी। जो आज तक कई स्थानों पर एक रूढ़ि बनकर समाज के गले की फांसी बनी हुई है। अंग्रेजों के काल में भी यह परंपरा यथावत बनी रही, अन्यथा प्राचीन भारतीय समाज में पर्दा प्रथा नही थी। आज समय करवट ले रहा है। दमन, दलन और उत्पीडन से मुक्त होकर नारी बाहर आ रही है।”

लेखिका संस्कृति पर्व की कार्यकारी सम्पादक और शिक्षाविद् हैं।

यह अलग बात है कि विगत के लगभग एक हजार वर्षो में भारत पर हुए आक्रमणों और बाहर की सभ्यताओं के प्रभाव ने हमारी व्यवस्था को बहुत हद तक प्रभावित किया और समाज में स्त्री की दशा दयनीय बन गयी। जो हमारे लिए पूज्य थी , बाहर की सभ्यताओं ने उसे केवल भोग्या बना कर स्थापित कर दिया जिसके परिणाम के कारण स्त्री की दशा दिन पर दिन खराब होती गयी। यही कारण था जिसने सती प्रथा , पर्दा प्रथा , तलाक , आदि को प्रचलित किया और स्त्री शोषण का बर्बर दौर शुरू हो गया। आज वह स्थिति नहीं है। अब पुनः हमारी नारी शक्ति को सामाजिक , आर्थिक , शैक्षिक , राजनैतिक सम्मान मिलाने लगा है और उसकी स्थिति में काफी बदलाव भी आया है। नारी सशक्तिकरण की बात समाज में रह रहकर उठती रही है। सशक्तिकरण का अर्थ कुछ इस प्रकार लगाया जाता है कि जैसे महिलाओं को किसी वर्ग विशेषकर पुरूष वर्ग का सामना करने के लिए सुदृढ किया जा रहा है। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी को पुरूष के समान अधिकार प्रदान किये गये हैं। उसे अपने जीवन की गरिमा को सुरक्षित रखने और सम्मानित जीवन जीने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया। यहां तक कि शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी महिलाओं को अपनी प्रतिभा को निखारने और मुखरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

भारत की नारी सदा अपने पति में भगवान शिव और श्री राम के दर्शन करती रही है। हमारे यह सांस्कृतिक मूल्य इस पतन की अवस्था में भी सुरक्षित हैं। मुस्लिम काल में हिंदू समाज के कई संप्रदायों ने महिलाओं को पर्दे में रखना आरंभ कर दिया। यह पर्दा प्रथा मुस्लिम समाज के आतंक से बचने के लिए जारी की गयी। जो आज तक कई स्थानों पर एक रूढि.बनकर समाज के गले की फांसी बनी हुई है। अंग्रेजों के काल में भी यह परंपरा यथावत बनी रही, अन्यथा प्राचीन भारतीय समाज में पर्दा प्रथा नही थी। आज समय करवट ले रहा है। दमन, दलन और उत्पीडऩ से मुक्त होकर नारी बाहर आ रही है। यह प्रसन्नता की बात है, किंतु फिर भी कुछ प्रश्न खड़े हैं। नारी के सम्मान के, नारी की मर्यादा के, नारी की गरिमा के और नारी सुलभ कुछ गुणों को बचाये रखने को लेकर। नारी की पूजा से देवता प्रसन्न होते हैं हमारे यहां ऐसा माना जाता है। जहां नारी का सम्मान होता है वहां देवताओं का वास होता है। इसका अर्थ नारी की आरती उतारना नही है, अपितु इसका अर्थ है नारी सुलभ गुणों-यथा उसकी ममता, उसकी करूणा, उसकी दया, उसकी कोमलता का सम्मान करना। उसके इन गुणों को अपने जीवन में एक दैवीय देन के रूप में स्वीकार करना। जो लोग नारी को विषय भोग की वस्तु मानते हैं वो भूल जाते हैं कि नारी सबसे पहले मां है, यदि वह मां के रूप में हमें ना मिलती और हम पर अपने उपरोक्त गुणों की वर्षा ना करती तो क्या होता? हम ना होते और ना ही यह संसार होता। तब केवल शून्य होता। उस शून्य को भरने के लिए ईश्वर ने नारी को हमारे लिये सर्वप्रथम मां बनाया। मां अर्थात समझो कि उसने अपने ही रूप में उसे हमारे लिये बनाया। इसलिए मां को सर्वप्रथम पूजनीय देवी माना गया। मातृदेवो भवः का यही अर्थ है। भारतीय नारी के इस मातृ स्वरुप ने ही भारत को इस धारा के विश्वगुरु के रूप में स्थापित किया था। इस समग्र सृष्टि की जननी के स्वरुप को ही भारत में पूजने की परंपरा चली आ रही है। यही सशक्त मातृ सत्ता का प्रमाण है। मातृशक्ति के सहारे ही भारत अपने समय के सभी संकटो से मुक्त होता रहा है।

यदि केवल पांच हज़ार साल पहले के ही अपने इतिहास पर नज़र डालें तो पता चलता है कि कैसे माता कुंती के तप ने पांच पांडवो को महाभारत जैसे भीषण युद्ध का विजेता तक बनाने में अपनी भूमिका निभायी। माता यशोदा के निश्छल प्रेम के साथ ही अनुशासन और मातृ शिक्षा ने कृष्ण को योगेश्वर कृष और महानायक बना दिया। उसी कृष्ण ने पांच हज़ार साल पहले इस धरती को अन्याय से मुक्त कराकर मानव सभ्यता को गीता की दृष्टि दी। हम उसका पालन न कर सके तो यह हमारा दोष है , कृष्ण का नहीं। कृष्ण के बाद 26 सौ वर्षो तक का इतिहास अज्ञात है। लेकिन उसके बाद महावीर से लेकर बुद्ध तक का इतिहास मातृ सत्ता के सशक्त स्वरुप का ही प्रमाण प्रस्तुत करता है। आदि गुरु भगवान शंकराचार्य के प्रकाश के पीछे भी एक माँ की समस्त शक्ति का प्रस्फुटन ही प्रमाणित होता है। माता आर्य अम्बा की शिक्षा और उनके संस्कारो ने जगत को आदि गुरु शंकर प्रदान किया।

भारत की माताओ की इसी शक्तिशाली परंपरा में चन्द्रगुप्त

की माता मोरा , सम्राट अशोक की माता धर्मा (शुभद्रांगी) जैसी अनेकानेक सशक्त नारियो के नाम भी शामिल हैं। मराठा वीर शिवाजी के इतिहास को तो आज सभी जानते हैं। माता जीजाबाई की क्षमता से भला कौन भारतीय होगा जो परिचित न हो।मराठा सम्राट छत्रपति शिवाजी राजे भोसले की माता जीजाबाई का जन्म सिंदखेड़ नामक गाँव में हुआ था। यह स्थान वर्तमान में महाराष्ट्र के विदर्भ प्रांत में बुलढाणा जिले के मेहकर जनपद के अन्तर्गत आता है। उनके पिता का नाम लखुजी जाधव तथा माता का नाम महालसाबाई था। जीजाबाई का विवाह शाहजी के साथ कम उम्र में ही हो गया था। उन्होंने सदैव अपने पति का राजनीतिक कार्यो मे साथ दिया। शाहजी ने तत्कालीन निजामशाही सल्तनत पर मराठा राज्य की स्थापना की कोशिश की थी। लेकिन वे मुगलों और आदिलशाही के संयुक्त बलों से हार गये थे। संधि के अनुसार उनको दक्षिण जाने के लिए मजबूर किया गया था। उस समय शिवाजी की आयु 14 साल थी अतः वे मां के साथ ही रहे। बड़े बेटे संभाजी अपने पिता के साथ गये। जीजाबाई का पुत्र संभाजी तथा उनके पति शाहजी अफजल खान के साथ एक लड़ाई में मारे गये। शाहजी मृत्यु होन पर जीजाबाई ने सती (अपने आप को पति के चिता में जल द्वारा आत्महत्या) होने की कोशिश की, लेकिन शिवाजी ने अपने अनुरोध से उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

वीर माता जीजाबाई छत्रपति शिवाजी की माता होने के साथ-साथ उनकी मित्र, मार्गदर्शक और प्रेरणास्त्रोत भी थीं। उनका सारा जीवन साहस और त्याग से भरा हुआ था। उन्होने जीवन भर कठिनाइयों और विपरीत परिस्थितियों को झेलते हुए भी धैर्य नहीं खोया और अपने 'पुत्र 'शिवा' को वे संस्कार दिए, जिनके कारण वह आगे चलकर हिंदू समाज का संरक्षक 'छात्रपति शिवाजी महाराज' बना। जीजाबाई यादव उच्चकुल में उत्पन्न असाधारण प्रतिभाशाली थी। जीजाबाई जाधव वंश की थी और उनके पिता एक शक्तिशाली सामन्त थे। शिवाजी महाराज के चरित्र पर माता-पिता का बहुत प्रभाव पड़ा। बचपन से ही वे उस युग के वातावरण और घटनाओं को भली प्रकार समझने लगे थे।

इसी क्रम में एक और नाम उभरता है अहिल्याबाई होल्कर का। अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थीं, बल्कि एक छोटे भू-भाग पर उनका राज्य कायम था और उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था, इसके बावजूद जनकल्याण के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह आश्चर्यचकित करने वाला है, वह चिरस्मरणीय है। राज्य की सत्ता पर बैठने के पूर्व ही उन्होंने अपने पति–पुत्र सहित अपने सभी परिजनों को खो दिया था इसके बाद भी प्रजा हितार्थ किये गए उनके जनकल्याण के कार्य प्रशंसनीय हैं। अहिल्याबाई ने अपने राज्य की सीमाओं के बाहर सम्पूर्ण भारत के प्रसिद्ध तीर्थों और स्थानों में मंदिर बनवाये, घाट बंधवाये, कुंओं और बावड़ियों का निर्माण किया, मार्ग बनवाये, पुराने पथों का मरम्मतीकरण करवाया, भूखों के लिए अन्नसत्र (अन्यक्षेत्र) खोले, प्यासों के लिए प्याऊ बिठलाईं, शास्त्रों के मनन-चिंतन और प्रवचन हेतु मंदिरों में विद्वानों की नियुक्ति की। और, मरते दम तक आत्म-प्रतिष्ठा के झूठे मोह का त्याग करके सदा न्याय करने का प्रयत्न करती रहीं।

रानी अहिल्याबाई ने काशी, गया, सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, द्वारिका, बद्रीनारायण, रामेश्वर, जगन्नाथ पुरी इत्यादि प्रसिद्ध तीर्थस्थानों पर मंदिर बनवाये और धर्म शालाएं खुलवायीं। कुछ इतिहासकारों ने इन मंदिरों को हिंदू धर्म की बाहरी चौंकियां बतलाया है। कहा जाता है कि रानी अहिल्याबाई भगवान शिव की अनन्य भक्ता थीं और एक बार उनके स्वरप्न में भगवान शिव आए और उन्हें प्रजा के कल्याण के लिए काशी विश्वनाथ की सुध लेने की सलाह दी। उन्हों ने 1777 में विश्व प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मंदिर का निर्माण कराया। शिव की भक्त अहिल्याबाई का सारा जीवन वैराग्य, कर्त्तव्य-पालन और परमार्थ की साधना का बन गया। मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा तोड़े हुए मंदिरों को देखकर ही उन्होंने सोमनाथ में शिव का मंदिर बनवाया। जो शिवभक्तों के द्वारा आज भी पूजा जाता है। शिवपूजन के बिना मुंह में पानी की एक बूंद नहीं जाने देती थी। मेवाड़ की पन्ना धाय को याद करने

की जरूरत है। राज्य की रक्षा के लिए बेटे का बलिदान बहुत ही साहस की बात है।

गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ़ खान से लड़कर अपनी जान गंवाने से पहले पंद्रह वर्षों तक शासन किया था। भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की बेहतर स्थिति को वापस हासिल करने की कोशिश की और प्रभुत्व के स्वरूपों पर सवाल उठाया.एक महिला संत-कवियित्री मीराबाई भक्ति आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण चेहरों में से एक थीं। इस अवधि की कुछ अन्य संत-कवियित्रियों में अक्का महादेवी, रामी जानाबाई और लाल देद शामिल हैं। हिंदुत्व के अंदर महानुभाव, वरकारी और कई अन्य जैसे भक्ति संप्रदाय में पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक न्याय और समानता की खुले तौर पर वकालत करने वाले प्रमुख आंदोलन थे।

कर्नाटक में कित्तूर रियासत की रानी, कित्तूर चेन्नम्मा ने समाप्ति के सिद्धांत (डाक्ट्रिन ऑफ़ लैप्स) की प्रतिक्रिया में अंग्रेजों के खिलाफ़ सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। तटीय कर्नाटक की महारानी अब्बक्का रानी ने 16वीं सदी में हमलावर यूरोपीय सेनाओं, उल्लेखनीय रूप से पुर्तगाली सेना के खिलाफ़ सुरक्षा का नेतृत्व किया। झाँसी की महारानी रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ़ 1857 के भारतीय विद्रोह का झंडा बुलंद किया। आज उन्हें सर्वत्र एक राष्ट्रीय नायिका के रूप में माना जाता है।

ये कुछ उदाहरण मात्र हैं जो भारत की मातृ शक्ति की क्षमता और उसकी भूमिका को रेखांकित करते है। तात्पॉर्य स्पष्ट है। बिना सशक्त माता के कोई राष्ट्र समर्थ नहीं बन सकता। यह हमारा सौभाग्य है कि हज़ारो वर्षो की पराधीनता के बाद भी भारत की माताओ ने समय समय पर ऐसे संतान दिए हैं जिन्होंने राष्ट्र को दी है। हमारी मातृशक्ति ही है जिसके दम पर भारत फिर विश्वगुरु बन सकने की स्थिति में पहुंच रहा है। लेकिन इस चित्र का दूसरा पहलू भी है।

कुछ विडम्बना है कि आज नारी के इस सहज सुलभ गुण का सम्मान नही हो रहा है। नारी मां के रूप में उत्पीडित है। किंतु यदि थोड़ा सूक्ष्मता से देखा जाए तो आज वह मां बनना भी नही चाह रही है। पुरूष के लिए यह भोग्या बनकर रहना चाह रही है।इसीलिए परिवार जैसी पवित्र संस्था का आज पतन हो रहा है। उसे अपना यौवन, अपनी सुंदरता और अपनी विलासिता के लिए अपने मातृत्व से ऊपर नजर आ रही है। पुरूष के लिए वह भोग्या बनकर रहना चाहती है। खाओ, पिओ एवं मौज उड़ाओ की जिंदगी में मातृत्व को समाप्त कर वह अपने आदर्शों से खेल रही है। आज महिला पुरूष के झगड़े अप्रत्याशित रूप से बढ़ रहे हैं। पुरूष ही नारी की हत्या नही कर रहा है अपितु नारी भी पति की हत्या या तो कर रही है या करवा रही है। निरे भौतिकवादी दृष्टिकोण का परिणाम है यह अवस्था।

मां नारी के रूप में जब मां बनती है तो वह हमारे जीवन का आध्यात्मिक पक्ष बन जाती है जबकि पिता भौतिक पक्ष बनता है। जीवन इन दोनों से ही चलता है। हमारे शरीर में आत्मा मां का आध्यात्मिक स्वरूप है और यह शरीर पिता का साक्षात भौतिक स्वरूप। अध्यात्म से शून्य भौतिकवाद विनाश का कारण होता है और भौतिकवाद से शून्य अध्यात्म भी नीरसता को जन्म देता है।

मां नारी के रूप में जब मां बनती है तो वह हमारे जीवन का आध्यात्मिक पक्ष बन जाती है जबकि पिता भौतिक पक्ष बनता है। जीवन इन दोनों से ही चलता है। हमारे शरीर में आत्मा मां का आध्यात्मिक स्वरूप है और यह शरीर पिता का साक्षात भौतिक स्वरूप। अध्यात्म से शून्य भौतिकवाद विनाश का कारण होता है और भौतिकवाद से शून्य अध्यात्म भी नीरसता को जन्म देता है। नारी को चाहिए कि वह समानता का स्तर पाने के लिए संघर्ष अवश्य करें किंतु अपनी स्वाभाविक लज्जा का ध्यान रखते हुए। निर्लज्ज और निर्वस्त्र होकर वह धन कमा सकती है किंतु सम्मान को प्राप्त नही कर सकती है।

नारी को चाहिए कि वह समानता का स्तर पाने के लिए संघर्ष अवश्य करें किंतु अपनी स्वाभाविक लज्जा का ध्यान रखते हुए। निर्लज्ज और निर्वस्त्र होकर वह धन कमा सकती है किंतु सम्मान को प्राप्त नही कर सकती है। भौतिकवादी चकाचौंध में निर्वस्त्र घूमती नारी, अंग प्रदर्शन कर अपने लिए तालियां बटोरने वाली नारी को यह भ्रांति हो सकती है कि उसे सम्मान मिल रहा है,किन्तु स्मरण रहे कि यह तालियां बजना, उसका सम्मान नही अपितु अपमान है क्योंकि जब पुरूष समाज उसके लिए तालियां बजाता है तब वह उसे अपनी भोग्या और मनोरंजन का साधन समझकर ही ऐसा करता है। जिसे सम्मान कहना स्वयं सम्मान का भी अपमान करना है।

नारी के बिना पुरूष की परिकल्पना भी नही की जा सकती। ईश्वर ने नारी को सहज और सरल बनाया है, कोमल बनाया है। उसे क्रूर नही बनाया। निर्माण के लिए सहज, सरल, और कोमल स्वभाव आवश्यक है। विध्वंश के लिए क्रूरता आवश्यक है। रानी लक्ष्मीबाई हों या अन्य कोई वीरांगना, अपनी सहनशक्ति की सीमाओं को टूटते देखकर ही और किन्ही अन्य कारणों से स्वयं को अरक्षित अनुभव करके ही क्रोध की ज्वाला पर चढ़ी।

यदि हमारे ऋषियों, मनीषियों ने सृष्टि, प्रकृति, नदियों, कंदराओं, तपस्या, पूजा, अर्चना, आराधना, आरती, श्रृंगार, रक्षा, मिट्टी, पृथ्वी, भूमि, वनस्पतियो और सर्व सुलभ साधना आदि को केवल स्त्रितत्व , मातृ तत्व के रूप में प्रतिपादित किया है तो इस निहितार्थ को समझने की आवश्यकता है। यह जननी में वास्तव में निर्माता है। यही करती है एक सशक्त परिवार, सशक्त समाज और सशक्त राष्ट्र का निर्माण।

सृष्टि के नाथ बाबा विश्वनाथ

कैप्टन सुभाष ओझा

देवों के देव महादेव आपकी महिमा तीनों लोक में विख्यात हे। समस्त चराचर जगत आपके चरण कमल में साष्टांग करता है। विश्वनाथ ज्योतिलिंग उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के काशी नगर में अवस्थित है। जो भगवान शिव के त्रिशूल पर विराजमान है। इस काशी क्षेत्र में 1. श्री दशाश्मेध 2. श्री लोलार्क 3. श्री बिन्दुमाधव 4. श्री केशव 5. श्री मणिकर्णिक। यह पॉच प्रमुख तीर्थ हैं जिसके कारण इसे अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता है। काशी के उत्तर में ओंकारखण्ड, दक्षिण में केदार खण्ड, मध्य में विशेश्वरखण्ड में ही बाबा विश्वनाथ प्रसिद्ध हैं। मन्दिर की पुनर्स्थापना जगत गुरू आदि शंकराचार्य जी ने की थी। 11वीं सदी में राजा हरीशचन्द्र ने बनवाया था। जिसे 1194 ई0 में मुहम्मद गोरी ने इसे तुड़वा दिया फिर सनातन हिन्दुओं द्वारा निर्मित कराया गया जिसे 1447 में सुल्तान महमूद शाह ने ध्वस्त कर दिया जिसे 138 वर्षों बाद राजा टोडरमल की सहायता से पंडित नारायण भट्ट द्वारा बनाया गया।

18 अप्रैल 1669 को औरंगजेब ने इस मन्दिर को ध्वस्त करने के आदेश दिये साथ मन्दिर तोड़कर ज्ञानव्यापी मस्जिद बना दी। ठीक 111 वर्ष बाद भगवान शिव की परमभक्त महारानी अहिल्याबाई ने ज्ञानव्यापी कुछ हटकर श्री विश्वनाथ के एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया। महाराजा रणजीत सिंह ने 1853 में 1000 किलो सोना से मन्दिर के कलश का स्वर्णजड़ित कराया।

1632 शाहजहॉ ने इस विश्वनाथ मन्दिर को तोड़ने के लिए सेना भेजी हिन्दूओं के विशाल संख्या मन्दिर के आस-पास घेरा बनाकर खड़ी हो गयाी जिससे सेना को वापस जाना पड़ा। 18 अप्रैल 1669 को औरंगजेब ने इस मन्दिर को ध्वस्त करने के आदेश दिये साथ मन्दिर तोड़कर ज्ञानव्यापी मस्जिद बना दी। ठीक 111 वर्ष बाद भगवान शिव की परमभक्त महारानी अहिल्याबाई ने ज्ञानव्यापी कुछ हटकर श्री विश्वनाथ के एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया। महाराजा रणजीत सिंह ने 1853 में 1000 किलो सोना से मन्दिर के कलश का स्वर्णजड़ित कराया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने साक्षात भगवान शिव को काशी घाट में श्मशान में शव के कान में राम-राम का मंत्र फूंकते दर्शन प्राप्त किये थे। इस काशी नगर की उत्पत्ति तथा भगवान शिव की नगरी काशी की कथा स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में वर्णित है जिसे ब्रहमाजी ने कहा है कि- हे नारद! हे देवशिरोमणे! आप सदा समस्त जगत के उपकार में ही लगे रहते हैं आपने लोगों के हित की कामना से यह बहुत उत्तम बात पूछी है। जिसके सुनने से समपूर्ण लोकों के समस्त पापों का क्षय हो जाता है, उस अनामय शिव तत्व का मैं आपसे वर्णन करता हूँ। शिवतत्व का स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्भुत है, जिसे यथार्थरूप से न मैं जान पाया हूँ, न विष्णु ही जान पाये और न अन्य कोई दूसरा ही जान पाया है। जिस समय यह प्रलयकाल हुआ, उस समय समस्त चराचर जगत नष्ट हो गया, सर्वत्र केवल अन्धकरार ही अन्धकार था। न सूर्य ही दिखायी देते थे और अन्यान्य ग्रहों तथा नक्षत्रों का भी पता नहीं था। न चन्द्र था, न दिन होता था, न रात ही थी, अग्नि, पृथ्वी, वायु और जल की भी सत्ता नहीं थी। प्रधान तत्व (अव्याकृत प्रकृति) से रहित सूना आकाश मात्र शेष था, दूसरे किसी तेज की उपलब्धि नहीं होती थी। अदृष्ट आदि का भी अस्तित्व नहीं था शब्द और स्पर्श भी साथ छोड़ चुके थे गन्ध और रूपकों भी अभिव्यक्ति नहीं होती थी। रस का भी अभाव हो गया था और दिशाओं का भी भान नहीं होता था। इस प्रकार सब और निरन्तर सूची भेद घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय तत्सद्ब्म्हा - इस श्रुति में जो 'सत' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। जब 'यह' 'वह' 'ऐसा' 'जो' इत्यादि रूप से निर्दिष्ट होने वाला भावा भावात्मक जगत नहीं था उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था जिसे योगीजन अपने हृदयाकाश के भीतर निरन्तर देखते हैं।

ब्रहमाजी बोले- पहले के पाद्याकल्प की बात है। मुझ ब्रहमा के मानसपुत्र पुलस्त्यसे विश्वा

लेखक उच्च न्यायालय लखनऊ में वरिष्ठ अधिवक्ता और राष्ट्रवादी चिंतक हैं।

का जन्म हुआ और विश्वा के पुत्र वैश्रवण कुबेर हुए। उन्होंने पूर्वकला में अत्यन्त उग्र तपस्या के द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेव की आराधना करके विश्वकर्मा के बनायी हुई इस अलकापुरी का उपभोग किया। उस कल्प के व्यतीत हो जाने पर मेघवाहन कल्प आरम्भ हुआ उस समय वह यज्ञदत्त का पुत्र (कुबेर के रूप में) अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा।

दीपदान मात्र से मिलने वाली शिवभक्ति के प्रभाव को जानकार शिव की चित्प्रकाशिका काशिकापुरी में जाकर अपने चित्त रूपी रत्नमय दीपकों से ग्यारह रूद्रों को उद्बोधित करके अनन्य भक्ति एवं स्नेह से सम्पन्न हो वह तन्मयापूर्वक शिव के ध्यान में मग्न होकर निश्चल भाव से बैठ गया। जो शिव से एकता का महान पात्र है, तप रूपी अग्नि से बढ़ा हुआ है, काम क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतंगों के आघात से शून्य है, प्राणनिरोध रूपी वायुशून्य स्थान में निश्चल भव से प्रकाशित है, निर्मल दृष्टि के कारण स्वरूप से भी नर्मल है तथा सद्भावरूपी पुष्पों से पूजित है ऐसे शिवलिंग का प्रतिष्ठा करके वह तब तक तपस्या में लगा रहा जब तक उसके शरीर में केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये। इस प्रकार उसने दस हजार वर्षों तक तपस्या की। वह सत्व का मन का विषय नहीं है। वाणी की भी वहॉ तक कभी पहुॅच नहीं होती। वह नाम तथा रूप रंग से भी शून्य है। वह न स्थूल है, न कृश है, न हस्य है, न दीर्घ है न लघु है और न गुरू ही है। उसमें कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है।

श्रुति भी उसके विषय में चकित भाव से है। इतना ही कहती है अर्थात उसकी सत्ता मात्र का ही निरूपण कर पाती हे उसका कोई विशेष विवरण देने में असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, ज्ञान स्वरूप अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिः स्वरूप अप्रमेद आधार रहित निर्विकार निराकार, निर्गुण योगिगम्य सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ मायाशून्य, उपद्रवरहित, अद्वितीय, अनादि अनन्त संकोच, विकास से शून्य तथा शून्मय है। जिस परब्रम्हा के विषय में ज्ञान और अज्ञान से पूर्ण उक्तियों द्वारा इस प्रकार ऊपर बताये अनुसार विकल्प किये जाते हैं उसने कुछ काल के बाद सृष्टि का समय आने पर द्वितीय होने की इच्छा प्रकट की। उसके भीतर एक से अनेक होने का संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्मा ने अपनी लीला भक्ति से अपने लिए मूर्ति (अकार) की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य गुणों से सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूप, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी सबकी एकमात्र वन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देने वाली और सम्पूर्ण संस्कृतियों का केन्द्र थी। उस शुरूरूपिणी ईश्वर मूर्ति की कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रम्हा अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परमब्रम्हा है उसी की मूर्ति चिन्मय आकार भगवान सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान उन्हीं को ईश्वर कहते हैं।

उस समय एकांकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करने वाले उन सदाशिव ने अपने विग्रह से स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्ति की सृष्टि की जो उनके अपने श्री अंग से कभी अलग होने वाली नहीं थी। उस पराशक्ति को प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया बुद्धितत्व की जननी तथ विकार रहित बताया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है उसी को प्रकृति, सवेश्वरी, दिवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं। सदाशिव द्वारा प्रकट की गयी उस शक्ति की आठ भुजाएॅ हैं। उस शुभलक्षण देवी के मुख की शोभा विचित्र है। वह अकेली ही अपने मुखमण्डल में सदा पूर्णिमा के एक सहस्त्र चन्द्रमाओं की कान्ति धारण करती है। नाना प्रकार के आभूषण उसे श्री अंगों की शोभा बढ़ाते हैं वह देवी नाना प्रकार की गतियों से सम्पन्न है और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धरण करती है उसके नेत्र खिले हुए कमल के समान जान पड़ते हैं।

वह अचिन्त्य तेज से जगमगाती रहती है वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होने पर भी वह माया संयोजवशात् अनेक हो जाती है। वे जो सदाशिव हैं उन्हें परमपुरूष, ईश्वर, शिव, शम्भू और अनीश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तक पर आकाश गंगा को धरण करते हैं उनके भालदेश में चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके पॉच मुख हैं और प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। पॉच मुख होने के कारण वे पंचमुख कहलाते हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता ह। वे दस भुजाओं से युक्त और त्रिशूलधारी हैं। उनके श्री अंगों की प्रभा कर्पूर के समान श्वेत गौर है वे अपने सारे अंगों में भस्म रमाये रहते हैं। उन कालरूपी ब्रहमा ने एक ही समय शक्ति के साथ शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्र को ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्ष का स्थान है। जो सबके ऊपर विराजमान है।

ये प्रिया प्रियतम रूप शक्ति और शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं उस मनोरज क्षेत्र में नित्य निवास करते हैं। वह काशीपुरी परमानन्दरूपिणी है। हे मुने! शिव और शिवा ने प्रलयकाल में भी कभी उस क्षेत्र को अपने सानिध्य से मुक्त नहीं किया है इसलिए विद्वान पुरूष उसे 'अविमुक्त क्षेत्र' भी कहते हैं।

मानव सेवा, माधव सेवा सनातन धर्म, मानव धर्म

डॉ. नीता चौबीसा

'मानव सेवा ही माधव सेवा है'। इस पंक्ति मे सम्पूर्ण सनातन धर्म का सार छिपा है| हिंदू धर्म ना केवल एक धर्म है अपितु यह एक जीवन शैली भी है जो की सेवा भाव को ही अपना धर्म मानता है। यह वह धर्म है जो सभी व्यक्तियो में बिना किसी भेदभाव के सभी को समान मानता है। वास्तव में एकमात्र सनातन धर्म ही ऐसा धर्म है जिसमे प्राणि मात्र के लिए समुचित स्थान, संरक्षण व पोषण की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है। सनातन धर्म मे एक सूत्र वाक्य प्रचलित है- 'सेवा परमो धर्मः'। इसके आधार पर सेवा ही परम धर्म है। वस्तुतः सनातन धर्म मे धर्म के दस लक्षण कहे गए हैं। इस प्रकार धर्म का पूरा एक पैकेज दिया गया है। इसके अंतर्गत ईश्वर की उपासना, अग्निहोत्र करना, माता-पिता व आचार्यों, दीन दुखियो की, मानव एवं प्राणि मात्र की सेवा करना ही परम् धर्म माना गया है। इसी प्रकार से निर्धनों व समाज सेवा में रत संस्थाओं को दान देना, परोपकार करना, राष्ट्र भक्ति, चरित्रवान होना, कुटिल न होना, परनिन्दा न करना आदि भी धर्म के ही अंग हैं।

आदि शंकराचार्य ने भी कहा था कि अद्वैत के स्वरूप को पाना है, तो हर व्यक्ति में छिपे भगवान को पहचानने की कोशिश करो। वह नारायण , जो तुम्हारे अंदर है, मेरे अंदर है और हर व्यक्ति के अंदर है। ऐसे में दूसरे के प्रति ईर्ष्या करने या झगड़ने की जरूरत नहीं है, हर व्यक्ति, प्राणि मात्र में बैठे उस भगवत तत्व को देखो और उसकी सेवा करो ,यही सच्ची सेवा है। यही बात हमारे सभी ग्रँथों, संतो, महापुरुषों ने कही है और यही मानव धर्म सनातन धर्म को विश्व धर्म बनाता है।

सम्पूर्ण सनातन वाङ्मय ऐसे सूत्र वाक्यों एव कथाओ से भरा पड़ा है जिसके आधार पर सनातन धर्म मे प्राणि मात्र की, मानव मात्र की सेवा ही परम् धर्म है इसलिए सनातन धर्म को मानव धर्म भी कहा गया है। सेवा भावना, यानी बिना किसी शर्त के प्यार व स्नेह बांटने की चाह पर विशेष जोर दिया गया है। वास्तव में 'सेवा' शब्द की बात करें तो यह 'सेव' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'सर्व करना' ! इसी को 'सविर्स' या 'सर्विंग' का रूप दे दिया गया। सेवा को आध्यात्म में मानवता के साथ जोड़ा गया है। यह सनातन धर्म की महान विशेषता है। मूलतः सनातन धर्म मे सेवा का यह सिद्धांत मूल रूप से छांदोग्य उपनिषद के उस महावाक्य 'तत-त्वम् असि' से निकला है, जिसका अर्थ है कि 'जो तू है वही मैं हूँ', अर्थात 'न सिर्फ मैं ब्रह्म हूं , बल्कि तुम भी ब्रह्म हो और ये सारे लोग भी ब्रह्म ही हैं।' यह महावाक्य हमें यही सीख देता है कि हर व्यक्ति में भगवान है और अगर आप दूसरे की सेवा कर रहे हैं, तो आप भगवान की ही सेवा कर रहे हैं।' इसलिए भारतीय सनातन वाङ्मय में दृढ़तापूर्वक यह तथ्य सुस्थापित किया गया है कि नर सेवा ही नारायण सेवा है और यही मूल धर्म का सार भी है। आदि शंकराचार्य ने भी कहा था कि अद्वैत के स्वरूप को पाना है, तो हर व्यक्ति में छिपे भगवान को पहचानने की कोशिश करो। वह नारायण, जो तुम्हारे अंदर है, मेरे अंदर है और हर व्यक्ति के अंदर है। ऐसे में दूसरे के प्रति ईर्ष्या करने या झगड़ने की जरूरत नहीं है, हर व्यक्ति, प्राणि मात्र में बैठे उस भगवत तत्व को देखो और उसकी सेवा करो, यही सच्ची सेवा है। यही बात हमारे सभी ग्रँथों, संतो, महापुरुषों ने कही है और यही मानव धर्म सनातन धर्म को विश्व धर्म बनाता है। तुलसीदास जी ने मानस में सही लिखा है–

'परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई!'

यहाँ पूजा पद्धति का तो कोई उल्लेख भी नहीं है, मात्र परहित में करुणा से बहना, द्रवित भाव से सेवा करना, ही सबसे बड़ा धर्म बताया गया है। परोपकार, उदारता एव

लेखिका शिक्षाविद् और राष्ट्रवादी चिंतक हैं।

करुणा ही सेवा की पार्श्व की मूल प्रेरणाएँ है। भारतीय सनातन वाङ्मय के अतिरिक्त दूसरी किसी भाषा में धर्म की परिकल्पना का ऐसा सेवा जन्य कोई दूसरा धर्म नहीं है।यह भारतीय संस्कृति की महानता है कि यहां तो पशु पक्षियों तक का भी धर्म बताया गया है।हमारी पौराणिक कथा के अनुसार राजा दिलीप नंदिनी गाय की सेवा करते थे। उसे चराने एक बार वह जंगल में गये। वहां एक सिंह उसे खाने को दौड़ा, राजा दिलीप ने उसे रोका, तो सिंह ने कहा -'तुम राजा हो और मैं आपकी प्रजा, मेरा धर्म है, भूख लगने पर जंगल में रहने वाले पशुओं को खाना ! आप राजा होकर मुझे मेरा धर्म पालन करने से रोक रहे हो !' राजा ने कहा कि 'ठीक है तुम्हारा धर्म है भूख मिटाना तो मेरा धर्म है गाय की रक्षा करना, तुम ऐसा करो कि तुम मुझे खाओ, तुम्हारा भी धर्म रह जाएगा और मेरा भी !'तब सिंह अपने वास्तविक स्वरुप में प्रगट हुआ और राजा को वरदान दिया। इसी प्रकार महाभारत की एक अन्य कथा के अनुसार राजा शिवी भी कबूतर को बचाने के लिये उसके वजन के बराबर अपना मांस बाज को देने के नाम पर अपना जीवन देने को तत्पर हो गये थे।प्राणि मात्र के प्रति ऐसी करुणा के उदाहरण अन्य किसी धर्म मे नही मिलते है । जब नन्हे जीवो के लिए राजन्यों ने अपने जीवन तक दांव पर लगा दिए हैं। ये कथाएं घटी या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है, इसमें निहित धर्म की परिकल्पना क्या है, वह महत्वपूर्ण है। पूजापद्धति तो धर्म का एक छोटा हिस्सा भर है, महत्वपूर्ण होता है वह जीवन दर्शन, वह जीवन शैली जो धर्म हमे जीने की राह सिखाता है। सनातन धर्म मे प्राणि मात्र के कल्याण की भावना सन्निहित है- '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' और इस हेतु हमारे वेदांगों यथा-श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र एवं धर्म सूत्र में सभी के चार पुरुषार्थो की प्राप्ति के साथ ही सभी गृहस्थों ,संयस्तो के प्राणि मात्र के प्रति कर्तव्यों को निर्धारित कर एक सुव्यवस्थित जीवनशैली दी गई है ताकि मानव धर्म बना रह सके। हमारे यहां कहा गया – '**सर्वे भवन्तु सुखिनः** 'संघर्ष नहीं, समन्वय करो। अपना भला हो पर दूसरों का बुरा होता हो तो उसे त्यागना, सब लोग अपना कर्तव्य पालन करें, अर्थ के पीछे भागना नहीं, संयमित उपभोग, मुक्ति के भी नियम हैं। सन्यासी के भी नियम- संग्रह नहीं, भिक्षा मांगना, एक स्थान पर नहीं टिकना आदि। एक पौराणिक कथा आती है कौशिक ऋषि की।कौशिक ऋषि के क्रोध से चिड़िया भस्म हो गई किन्तु कर्तव्य परायण गृहिणी का कुछ नहीं बिगड़ा। इतना ही नहीं उसने कौशिक ऋषि को लताड़ा भी कि क्या मुझे चिड़िया समझा है? ऋषि को अचम्भा हुआ कि इन्हें वह घटना कैसे मालुम हुई। पूछा तो उसने उन्हें धर्मव्याध के पास जाने को कहा। एक व्याध मुझे क्या शिक्षा देगा, सोचते हुए ऋषि उसके पास पहुंचे, किन्तु उस व्याध ने पहले माता पिता की सेवा की, फिर इनसे कहा कि पूछो क्या पूछना है? इन्हें फिर अचम्भा हुआ कि इसे कैसे मालूम कि मैं कुछ पूछने आया हूँ। कर्तव्य पालन एव निष्काम सेव से सिद्धि प्राप्ति की अद्भुत कथा। अपनी जरूरतें कम करने से ही दूसरों की जरूरतें पूरी होंती है। यही शास्वत धर्म है जिसे प्राचीन भारतीय ऋषि प्रज्ञा ने खोज निकाला और स्थापित किया ! विविधता में एकता देखना, सबको साथ ले कर चलाना, सबके साथ चलना, त्याग और संयम को सीखना, इसे ही सनातन धर्म कहते हैं और यही युग धर्म भारत में पहचाना गया। मानव के आचरण को परिभाषित करने वाले इस मानव धर्म को ही हम हिन्दू धर्म कहते हैं।

भारत में प्रचीन काल से ही गुरु शिष्य परम्परा रही है जिसके मूल में भी शिष्य द्वारा गुरु की निष्काम सेवा का मूल मंत्र सिखाया जाता था ताकि गुरुकुल से जाने के बाद वह निष्काम भाव से समाज की सेवा कर सके।भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु अपने शिष्य को शिक्षा देता है या कोई विद्या सिखाता है और उसके बदले बिना कुछ लिए गुरु ज्ञान देता और शिष्य निष्काम भाव से गुरुकुल में रह कर सेवा भावना विकसित करता।बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। गुरु-शिष्य की यह परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, जैसे- अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु आदि। इस परम्परा के पीछे भी मानव धर्म की भावना विकसित करना ही मूल उद्देश्य था ताकि समाज के लिए समाजोपयोगी व जनकल्याणकारी नागरिक तैयार कर सके। महाभारत में वर्णित गुरुकुल की सेवाधर्म की अनेक कथाओ उपाख्यानों में -आरुणि,उपमन्यु व एकलव्य की कथाएं जगत प्रसिद्ध हैं।जहां तक ब्रह्मज्ञान प्रदाता सदगुरु की बात है उनकी सेवा की महिमा तो स्वयं देवो,महर्षियों, देवर्षियों,राजर्षियों ने भी मुक्त कंठ से गाई है। उपनिषदों व भारतीय सनातन ग्रँथों के साथ साथ गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है।गीता के इन वचनों से गुरु-शिष्य संबंधों की स्थापना के विषय में जाना जा सकता है जब भगवान गीता में कहते हैं-'**तद्विद्धिप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**' अर्थात भगवान कहते है ऐसे सद्गुरु से यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने हेतु बारम्बार प्रणाम करके, बार-बार प्रश्न पूछ करके व अत्यंत विनम्रता से सेवा द्वारा प्राप्त करो। प्रणाम और सेवा का अर्थ ही है अहंकार रहित होना, विनम्र होना।

गुरु सेवा गुरु के प्रति की गयी सेवा है । जब एक शिष्य अपने

गुरु से प्रेम करता है वह गुरु की निष्काम भाव से सेवा करता है । 'गुरु सेवा जो सभी शिष्यों के लिए सामान्य है' गुरु की शिक्षाओं का अनुसरण होती है और अध्यात्मिक तकनीकों का नियमित एवं अनुशासित ढंग से अभ्यास करना होती है । सभी शिष्य गुरु के प्रति भौतिक या भौगोलिक सामीप्य नहीं रखते हैं ।इसलिए वे गुरु के प्रति व्यक्तिगत सेवा नहीं कर सकते हैं ।इसलिए जहाँ कहीं भी शिष्य रहता हो जीवन के किसी भी पड़ाव में गुरुआज्ञाओ का पालन कर,शिक्षाओं एवं दिशानिर्देशों द्वारा सेवा कर सकता है। गुरु के प्रति सच्ची गुरु भक्ति या प्रेम निसंदेह गुरु की शिक्षाओं का अनुसरण करना होता है। एक शिष्य जो गुरु की शिक्षाओं का अभ्यास करता है, वह क्रोध, नुकसान, घमंड, आसक्ति एवं तामसिकता के आंतरिक लघु परिपथों से ऊपर उठता जाता है। वह आशीर्वाद के बारे में जो गुरु से प्रवाहित होता है दूसरों के लिए एक उदाहरण होता है,जिसे सद्गुरु द्वारा शक्तिपात दीक्षा कहते है जिससे शिष्य अध्यात्मिक रूप से फलता फूलता है एवं उसकी प्रेम एवं सेवा की सुगंध उसके गुरु को प्रदर्शित करती है तथा गौरवान्वित करती है। जब यह सेवाभाव उसके जीवन मे उतरता है तो वह स्व से ऊपर उठकर परहित में जीने का सलीका सीखता है। यही गुरुतत्व व गुरुसेवा का मर्म है कि यह मानव सेवा से मनुष्य को सीधे जोड़ती है। इसलिए जब जब भी प्रभु का अवतार होता है तो वह भी इस सद्गुरु सेवा के धर्म को अवश्य निभाते है। इसलिए भारतीय शास्त्रो में कहा गया कि-'राम कृष्ण ते कौन बड़ो,तिन्ह ने भी गुरु कीन्ह,तीन लोक के नायका, गुरु आगे आधीन ! 'योग वशिष्ठ महारामायण, रामचरितमानस, वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि राम ने भी अपने गुरु वशिष्ठ ऋषि की बड़ी ततपरता से सेवा की थी।राम ने वशिष्ठ ऋषि के प्रति गुरु सेवा को किया तथा उन्हें प्रसन्न किया ।उनके गुरु ने उन्हें उन मन्त्रों से अवगत कराया जो युद्ध में विशिष्ट प्रयोजनों में प्रयोग किये जाते हैं। उन्होंने राम को चक्रों, नाड़ियों तथा कुण्डलिनी शक्ति के ज्ञान से पुरस्कृत किया। उन्होंने राम को शक्तिपात दिया और बाद में राम ने शक्तिपात के इस ज्ञान को लक्ष्मण तथा हनुमान से अवगत कराया । हनुमान चिरंजीवी हैं । इसका तात्पर्य होता है कि वे अनन्त जीवन रखते हैं । हनुमान अब भी मानवता के लाभ के लिए सर्वथा उचित व्यक्ति को इस ज्ञान को देने की प्रतीक्षा करते हैं। राम ने विश्वामित्र की सेवा कर शस्त्र विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। महाभारत और गर्ग सहिंता व अन्य पुराणों से ज्ञात होता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपने गुरु सान्दिपनी के आश्रम में गुरु सेवा की। उन्होंने भूमि को धोया एवं स्वच्छ किया, पूजन सामग्री, अलाव एवं पानी एकत्रित किया। यद्यपि वे भगवान विष्णु के अवतार थे, वे विनीत, आज्ञाकारी तथा समर्पित थे।उन्होंने अन्य दूसरे साधारण विद्यार्थियों की तरह अपने गुरु द्वारा दिए गए समस्त कार्य को सम्पादित किया। परिणाम के रूप में वे चौंसठ दिनों में चौंसठ कलाओं में माहिर हो गए। श्री कृष्ण ने अपने गुरु दुर्वासा का रथ स्वयं ढोया था जिसके आशीर्वाद स्वरूप उन्हें अंगरक्षक खीर का लेप मिला था जो वह अपने तलवे पर लगाना भूल गए और वही तलवा बहलिए के तीर का शिकार बना जिससे उनकी मृत्यु हुई। यह सही दृष्टिकोण से संपादित की गयी गुरु सेवा का आशीर्वाद ही है। और कालांतर में हम यह देखते है कि बाल्यकाल में इन महागुरुओ द्वारा बोए गए निष्काम सेवा के बीज ने इन दोनों के व्यक्तित्व व कृतित्व में ऐसी ऊर्जा भर दी कि दोनों महान अवतारों ने जनमानस के कष्टों को हरते हुए नवीन व्यवस्थाओ का सूत्रपात किया औऱ जनमानस में ऐसा स्थान बनाया कि हजारो वर्षो बाद भी मानव सभ्यता उनकी मानवता के प्रति की गई सेवा से आज तक उऋण नही हो पाई और न ही उन्हें अब तक भूला पाई है। भारत मे सिख धर्म की तो सेवा के बैगेर कल्पना तक नही की जा सकती है। दस महान गुरुओ ने मानव सेवा को इतनी तरजीह दी कि सेवा सिख धर्म का मूल मंत्र बन गया। सिख धर्म में बिना सेवा के पूजा का कोई महत्व ही नहीं है (गुरु ग्रंथ साहिब 1013) आध्यात्मिक जीवन के लिए सेवा भावना को सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है। यही कारण है कि हर सिख अपनी प्रार्थना में गुरु से सेवा का एक मौका मांगता है। सेवा में भी तीन तरह की सेवाओं की यहां चर्चा मिलती है। एक, जो अपने शरीर के माध्यम (तन) से की जाए, दूसरी, जो मानसिक सहयोग (मन) के आधार पर की जाए और तीसरी, जो भौतिक आधार (धन) पर की जाए। इनमें से पहला आधार सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। गुरुदास वाणी में कहा गया है, जिन हाथ-पांव का प्रयोग सेवा में नहीं किया गया, उनका होना बेकार है। इससे जुड़ी सबसे अच्छी बात सिख पंथ में कही गई है, 'मैं भीख मांगता हूं, हे दयालु गुरुवर, तुम मुझे अपने दासों का दास बनाओ...मुझे उन्हें सुख पहुंचाने का मौका दो, पानी पिलाने का अवसर दो और उनके पैर धोने का मौका दो।' यह बात गुरु अर्जुन देव की है।उन्होंने कहा है कि मानव के द्वारा सेवा उसकी अपनी प्रतिभा पर निर्भर करती है। इस प्रतिभा में उसकी क्रिएटिविटी, समर्पण, कम्युनिकेशन और प्रबंधन क्षमता शामिल है। यह इस बात पर भी निर्भर है कि वह दूसरे के दर्द को किस हद तक अनुभव कर पाता है। धन और दान के जरिए सेवा की भावना के बारे में सिख पंथ में अच्छी चर्चा है। यहां अपनी आमदनी का दसवां हिस्सा 'दसबंध' कम्युनिटी सविर्स के लिए देने का रिवाज भी है। सिख सिद्धांत में सच्ची सेवा का अर्थ वह है, जिसमें फल पाने की चाहत न हो, नीयत बिल्कुल शुद्ध हो और अपना स्वार्थ न छिपा हो। सिख के लिए ऐसी सेवा मुक्ति का शाश्वत द्वार है।

ऐसे उदाहरणों से सिख इतिहास भर पड़ा है जब गुरु सेवा करते हुए शिष्य का अन्तःकरण इतना पवित्र हो गया कि उसे सब मे केवल गुरु ही नज़र आने लगा।एक घटना गुरु गोविंद सिंह जी के शिष्य भाई घनैया जी की है जो युद्ध के दौरान सिर्फ

गुरु जी की सेना को ही नहीं बल्कि दुश्मन की सेना को भी पानी पिलाते थे,जब दूसरे शिष्यों ने गुरु से उनकी शिकायत की तो भाई घनैया से गोविंद सिंह जी ने पूछा।तो भाई घनैया ने जवाब में विनम्रतापूर्वक कहा-'कहा, गुरु साहिब जी! मैं क्या करूं... मुझे तो जंग के मैदान में कोई दूसरा नजर ही नहीं आता। मैं जहां भी देखता हूं, मुझे सिर्फ आप नजर आते है और मैं जो भी सेवा करता हूं वो सब आपकी ही सेवा होती है। उन्होंने कहा गुरु साहिब जी आपने कभी भेदभाव करने का पाठ सिखाया ही नहीं।' गुरु गोविंद सिंह जी भाई घनैया जी की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि -'भाई घनैया जी आप गुरु घर के उपदेशों को सही मायने में समझ गए हैं। 'गुरु गोविंद सिंह जी ने शिकायत करने आए लोगों से कहा कि 'हमारा कोई दुश्मन नहीं है। किसी धर्म, व्यक्ति से अपनी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं है। दुश्मनी है, जालिम के जुल्म से... ना कि किसी इंसान से। इसलिए सेवा करते समय सभी को एक जैसा ही मानना चाहिए।' गुरु गोविंद सिंह जी ने भाई घनैया जी को मल्हम और पट्टी भी दी और कहा - 'भाई घनैया, आज से जहां आप पानी पिलाते हैं वहां घायलों को दवाई लगाकर सब की मरहम पट्टी कर सेवा भी कीजिए।' गुरु गोविंद सिंह जी के उपदेशानुसार हमें याद रखना चाहिए कि मानव सेवा करते समय हमारी दृष्टि सदैव समान बनी रहें। ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व इतिहास में कहीं अन्यत्र मिले जब दुश्मन सेना की भी इतनी सेवा की जाती हो। महाभारत के प्रसंगानुसार द्रौपदी भी युद्धोपरांत रात को घायलों की सेवा करते वक्त यह नही देखती थी कि यह शत्रु पक्ष का है या स्व पक्ष का है। निष्काम मानव सेवा सनातन धर्म को मानव धर्म की ऊंचाइयों पर ले जाता है ।

मानवता की निष्काम सेवा की असंख्य कथाएं हमारे सनातन शास्त्रो में भरी पड़ी है। एक बार स्वामी विवेकानंद से सत्येन्द्र बनर्जी नामक युवक गीता पढ़ने पहुंचे। उन्हें मानव धर्म समझाने की प्रेरणास्पद कहानी विवेकानंद की पुस्तक "कोलंबो से अल्मोड़ा तक व्याख्यान'में दर्ज है।वास्तव में, यह बांग्ला भाषा में गीता के गेय पदों का काव्य रूपांतरण करने वाले आचार्य सत्येन्द्र बनर्जी थे, जिन्होंने बचपन में स्वामी विवेकानंद से गीता पढ़ने की इच्छा व्यक्त की थी। इस पर स्वामी जी ने उनसे कहा था कि उन्हें पहले छ माह तक फुटबॉल खेलना होगा, निर्धनों और असहायों की मदद करनी होगी तभी वो उनसे गीता पाठ की बात रखने के लायक होंगे। इस पर जब बालक ने स्वामी विवेकानंद से पूछा कि गीता तो एक धार्मिक ग्रंथ है, फिर इसके ज्ञान के लिए फुटबॉल खेलना और निर्धनों असहायों की सहायता करना क्यों जरुरी है? इस पर स्वामी जी ने अपने जवाब में कहा- 'गीता वीरजनों और त्यागी समर्पित महापुरुषों,व्यक्तियों का महाग्रंथ है। इसलिए जो वीरत्व और सेवाभाव से भरा होगा, वही गीता के गूढ़ श्लोकों का रहस्य समझ पाएगा।' छ माह तक स्वामी जी के बताए तरीकों का अनुसरण करने के बाद , दीन हीनो की सेवा व फुटबॉल खेल कर जब बालक सत्येंद्र वापस स्वामी के पास लौटे, तो स्वामी विवेकानंद ने उन्हें गीता का ज्ञान दिया। विवेकानंद के फुटबॉल खेलने का असल मायनों में यही मतलब रहा होगा कि स्थूल शरीर प्रखर विचारों का जनक नहीं हो सकता और मानवता की सेवा के बिना गीता के मर्म को नही समझा जा सकता है।यही लगभग हमारे सभी सनातन संतो की भी सीख है ।

हालांकि सेवाधर्म इतना सरल नही है। तुलसी दास जी ने मानस में लिखा है-'आगम निगम प्रसिद्ध पुराना सेवा धर्म कठिन जग जाना ! 'सेवा जितनी सरल दिखती है उतनी होती नहीं केवल निर्मल चित्त से ही सेवा होती है और चित्त निर्मल हो तो मन मस्तिष्क में करुणा, मैत्री समता के अतिरिक्त कुछ शेष रहता ही नहीं ! सब अपने, ना कोई वेरी, ना ही कोई बेगाना, सामने वाले की पीड़ा अपनी पीड़ा हो जाती है ! ऐसे में सेवा करते समय मन में किसी बेचारे पर दया करने का भाव उत्पन्न हीं कैसे हो सकता है? यह विचारणीय जान पड़ता है। और यदि दया के साथ ही दूसरों के प्रति हीनता की भावना आ गई तो ऐसी सेवा ही व्यर्थ है। दया का भाव यदि व्यर्थ का अहंकार या दाता भाव पैदा करने लगे कि 'मैंने किया' तो ऐसी सेवा ही व्यर्थ हो जाती है अतः सेवा के भाव में निष्काम भाव तथा प्रभु सेवा का समर्पित भाव होना आवश्यक है इसीलिए सन्तो ने एव तुलसीदास ने सेवा कार्य को अत्यंत कठिन बताया है। मानस में तुलसी ने लिखा है-' सिर भर जाऊं उचित अस मोरा, सबसे सेवक धर्म कठोरा।' इसी बात को अन्य ग्रंथों में कहा गया कि '**सेवा धर्मः परम गहनो योगिना मध्यगम्य**' अर्थात सेवा धर्म बहुत कठिन है यह तो योगियों के लिए भी बहुत कठिन है फिर हर किसी की मनः स्थिति योगियों जेसी भी नहीं होती है। ऐसी अवस्था में सामान्य मनुष्य तो निष्काम सेवा की कल्पना भी नहीं कर सकता क्योंकि आजकल प्रायः सेवा करके उसकी फोटो खींचकर प्रचार करने का प्रचलन बढ़ गया है या सेवा के प्रतिफल में मेवा चाहने वालों की कमी कतई नहीं है। ऐसी सेवा को सेवा नहीं कहा जाएगा। निष्काम भाव से प्रभु-सेवा की सेवा भावना से की गई सेवा ही मानव सेवा है और यही दरिद्र नारायण की सेवा मानव धर्म है जो हमें सनातन धर्म सिखाता है जिसकी जड़ें अत्यंत प्राचीन है हालांकि वर्षा ऋतु में यदि फसल बोई जाए तो बीज जब डाले जाते हैं तो वह भूमि में सीधे पड़े या उल्टे यह नहीं देखा जाता है। सकाम सेवा भी निष्फल नहीं होती लेकिन निष्काम भावना से की गई मानव सेवा ही सच्चा मानव धर्म है। नर सेवा ही नारायण सेवा है यही भारतीय सनातन संस्कृति का मर्म है। उसी से मानवता का उत्थान है और यही सनातन धर्म भी है।

संदर्भ आलेख

संस्कृति पर्व के जुलाई-2021 में प्रकाशित सनातन विश्व नामक विशेषांक से दो संदर्भ आलेख लिये जा रहे हैं। ये आलेख इस अंक के लिए इसलिए संदर्भित हैं क्योंकि सनातन संस्कृति की वैश्विक अवधारणा की स्थापना के लिए आयोजित हो रही काशी की संस्कृति संसद-2021 का यह आधार विषय है। इन दोनों आलेखों के लिए स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी एवं श्री शिव प्रताप शुक्ल जी के प्रति आभार!

सम्पादक

सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति

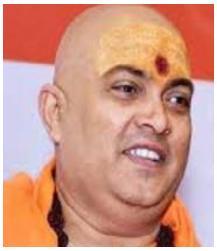

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती

प्राचीन विश्व मे पृथ्वी पर केवल सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति ही विद्यमान थी। प्रत्येक मनुष्य सनातन होता था। सनातन जीवन था। सनातन चिंतन था। सनातन ही सभ्यता थी। वसुधा कुटुंब था। सृष्टि और प्रकृति के साथ संस्कृति की अवधारणा थी। क्लांतर के कथित विकास और फिर पंथों और विविध उपासना पद्धतियों ने मानव में भेद का निर्माण किया और आज विश्व अशांत और अमानवीय यंत्रणाओं से त्रस्त है। ऐसे में उस प्राचीन सनातन की खोज में अब सभी को लगने की आवश्यकता आ गयी है।

विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। 'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।

सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूदीपं निबोधत।
अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम।।
प्रियव्रतोअभ्यषिञ्चतं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम्।।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरूषोअनुजः।।
नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत। (वायु 31-37, 38)

यह विदित है कि प्राचीन काल में भारत की सीमा अफगानिस्तान के हिन्दूकुश से लेकर अरुणाचल तक और कश्मीर से लेकर श्रीलंका तक। दूसरी ओर अरुणाचल से लेकर इंडोनेशिया, मलेशिया तक फैली थी। इस संपूर्ण क्षेत्र में 18 महाजनपदों के सम्राटों का राज था जिसके अंतर्गत सैंकड़ों जनपद और उपजनपद थे। सात द्वीपों में बंटी धरती के संपूर्ण जम्बूद्वीप पर सनातन वैदिक हिन्दू धर्म ही स्थापित था।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में कहीं पर भी अन्यायपूर्ण युद्धों की प्रशंसा नहीं की गयी है। लोग साधारणता शान्तिपूर्ण जीवन जीने में विश्वास रखते थे। चारों ओर न्याय, वसुधैव कुटुम्बकम, सुख, शान्ति एवं ज्ञान का बोलबाला था।परन्तु आठवीं सदी में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को रौंदता, बर्बाद करता इस्लाम आखिर सोने की चिड़िया कहलाने वाले इस भूभाग पर भी आ धमका और इस पूरे क्षेत्र को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से तहस-नहस कर डाला। समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं उस समय के भव्य मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया। तक्षशिला, नालन्दा एवं विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों को नष्ट कर जला दिया गया।

लेखक अखिल भारतीय संत समिति के राष्ट्रीय महामंत्री और श्रीगंगा महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री हैं।

यह तो अब प्रामाणिक है कि प्राचीनकाल में संपूर्ण धरती पर सनातन संस्कृति ही थी। मैक्सिको, अमेरिका, रूस, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्की, सीरिया, इराक, स्पेन, इंडोनेशिया, चीन आदि सभी जगह पर हिन्दू धर्म से जुड़े साक्ष्य पाए गए हैं। विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। 'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।

इराक में भगवान श्रीराम और श्री हनुमानजी

अभी दो वर्ष पहले भारत से हजारों किलोमीटर दूर इराक में कुछ ऐसा हुआ है जिसने ये प्रमाण दिया है कि भगवान श्रीराम और उनके भक्त हनुमान जी की कथा सत्य है। हाल ही में मीडिया में आई रिपोर्टों के मुताबिक़ इराक के सिलेमानिया इलाके में मौजूद बैनुला बाईपास के पास खुदाई में भगवान राम और हनुमान जी की दुर्लभ प्रतिमाएं पाई गयी हैं । इन प्रतिमाओं के पाए जाने की पुष्टि खुद इराक सरकार ने की है। भारत द्वारा इस मामले पर मांगी

गयी जानकारी के जावब में इराक सरकार ने एक पत्र लिखकर इस बात की पुष्टि है। इतना ही नहीं इरान सरकार के पुरातत्व विभाग का दावा है कि ये प्रतिमाएं करीब 6 हजार साल पुरानी हैं। प्रतिमाओं के मिलने के बाद भारत सरकार ने भी इन प्रतिमाओं से जुड़ी और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जाहिर की है। इराक में भारतीय राजदूत प्रदीप सिंह राजपुरोहित की अगुआई में एक प्रतिनिधिमंडल ने उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग की एक शोध इकाई, अयोध्या शोध संस्थान के आग्रह पर यह कार्रवाई की है. एब्रिल वाणिज्यदूतावास में भारतीय राजनयिक चंद्रमौली कर्ण, यूनिवर्सिटी ऑफ सुलेमानिया और इराक में कुर्दिस्तानी गवर्नर ने भी इस अभियान में हिस्सा लिया। अयोध्या शोध संस्थान ने भी आधिकारिक रूप से कहा है कि बेलूला दर्रे में राम की तस्वीर के वास्तविक साक्ष्य मिले हैं, लेकिन इस प्रतिनिधिमंडल ने भारत और मेसोपोटामियाई संस्कृति में संबंध ढूंढने और विस्तृत अध्ययन करने के लिए चित्रात्मक साक्ष्य लिए गए हैं।

16 महाजनपद

महाभारत काल में अखंड भारत के मुख्यतः 16 महाजनपदों (कुरु, पंचाल, शूरसेन, वत्स, कोशल, मल्ल, काशी, अंग, मगध, वृज्जि, चेदि, मत्स्य, अश्मक, अवंति, गांधार और कंबोज) के अंतर्गत 200 से अधिक जनपद थे। दार्द, हूण, हुंजा, अम्बिस्ट आम्ब, पख्तू, कैकय, वाल्हीक बलख, अभिसार (राजौरी), कश्मीर, मद्र, यदु, तृसु, खांडव, सौवीर सौराष्ट्र, शल्य, यवन, किरात, निषाद, उशीनर, धनीप, कौशाम्बी, विदेही, अंग, प्राग्ज्योतिष (असम), घंग, मालव, कलिंग, कर्णाटक, पांडय, अनूप, विन्ध्य, मलय, द्रविड़, चोल, शिवि शिवस्थान-सीस्टान-सारा बलूच क्षेत्र, सिंध का निचला क्षेत्र दंडक महाराष्ट्र सुरभिपट्टन मैसूर, आंध्र, सिंहल, आभीर अहीर, तंवर, शिना, काक, पणि, चुलूक चालुक्य, सरोस्ट सरोटे, कक्कड़, खोखर, चिन्धा चिन्धड़, समेरा, कोकन, जांगल, शक, पुण्ड्र, ओड्र, क्षुद्रक, योधेय जोहिया, शूर, तक्षक व लोहड़ लगभग 200 जनपद से अधिक जनपदों का महाभारत में उल्लेख मिलता है। ग्रंथ बताते हैं कि म्लेच्छ और यवन को विदेशी माना जाता था। भारत में भी इनके कुछ क्षेत्र हो चले थे। हालांकि इन विदेशियों में भारत से बाहर जाकर बसे लोग ही अधिक थे। देखा जाए तो भारतीयों ने ही अरब और यूरोप के अधिकतर क्षेत्रों पर शासन करके अपने कुल, संस्कृति और धर्म को बढ़ाया था। उस काल में भारत दुनिया का सबसे आधुनिक देश था और सभी लोग यहां आकर बसने और व्यापार आदि करने के प्रति उत्सुक रहते थे। भारतीय लोगों ने भी दुनिया के कई हिस्सों में पहुंचकर वहां शासन की एक नए देश को गढ़ा है, इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, थाईलैंड इसके बचे हुए उदाहरण है। भारत के ऐसे कई उपनिवेश थे जहां पर भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचलन था।

यवनाचार्य ऋषि गर्ग

ऋषि गर्ग को यवनाचार्य कहते थे। यह भी कहा जाता है कि अर्जुन की आदिवासी पत्नी उलूपी स्वयं अमेरिका की थी। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी कंदहार और पांडु की पत्नी माद्री ईरान के राजा सेल्यूकस (शल्य) की बहिन थी। ऐसे उल्लेख मिलता है कि एक बार मुनि वेद व्यास और उनके पुत्र शुकदेव आदि जो अमेरिका में थे। शुक ने पिता से कोई प्रश्न पूछा। व्यास जी इस बारे में चूंकि पहले बता चुके थे, अत उन्होंने उत्तर न देते हुए शुक को आदेश दिया कि शुक तुम मिथिला (नेपाल) जाओ और यही प्रश्न राजा जनक से पूछना। ऐसा वर्णन मिलता है कि शुक अमेरिका से नेपाल जाना पड़ा था। कहते हैं कि वे उस काल के हवाई मार्ग से निकले उसका विवरण एक सुन्दर श्लोक में है-

'मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे हेमवँते ततः।

क्रमेणेव समागम्य भारतं वर्ष मासदत्।।

सदृष्टवा विविधान देशान चीन हूण निषेवितान।

अर्थात शुकदेव अमेरिका से यूरोप (हरिवर्ष, हूण, होकर चीन और फिर मिथिला पहुंचे। पुराणों हरि बंदर को कहा है। वर्ष माने देश। बंदर लाल मुंह वाले होते हैं। यूरोपवासी के मुंह लाल होते हैं। अतःहरिवर्ष को यूरोप कहा है। हूणदेश हंगरी है यह शुकदेव के हवाई जहाज का मार्ग था। अमेरिकन महाद्वीप के बोलीविया (वर्तमान में पेरू और चिली) में हिन्दुओं ने प्राचीनकाल में अपनी बस्तियां बनाईं और कृषि का भी विकास किया। यहां के प्राचीन मंदिरों के द्वार पर विरोचन, सूर्य द्वार, चन्द्र द्वार, नाग आदि सब कुछ हिन्दू धर्म समान हैं। जम्बू द्वीप के वर्ण में अमेरिका का उल्लेख भी मिलता है। पारसी, यजीदी, पैगन, सबाईन, मुशरिक, कुरैश आदि प्रचीन जाति को हिन्दू धर्म की प्राचीन शाखा माना जाता है।

भगवान गणेश , श्री राम और हनुमान की मूर्ति

अरब,ईरान,इराक,मिश्र,सीरिया,जॉर्डन सभी प्राचीन सनातन वैदिक हिन्दू ही थे। अरब में इस्लाम का कोई सबूत 1400 साल से पुराना नहीं है। इस्लाम का तो पूरा इतिहास ही 1400 साल पुराना है।अरब में ही 6000 साल पुराना हिन्दू धर्म का सबूत मौजूद है और ये खोज भी अरब के देश इराक में जाकर कोई हिन्दुओ ने नहीं बल्कि वही के मुस्लिम शोधकर्ताओं ने की है। अरब में खुदाई के दौरान गणेश जी की विशाल प्रतिमा जमीन से निकलने के बाद इराक में मिली। भगवान् राम और हनुमान की 6000 साल पुरानी आकृति, इराक भले ही आज मुस्लिम देश हो, पर ये हमेशा से मुस्लिम देश नहीं रहा है। इराक का असल नाम 'मेसोपोटामिया' है, सऊदी अरब की तरह इराक में भी हिन्दू

धर्म ही फैला हुआ था और उसका सबूत भी इराक में मिला है।

इस्लामिक इतिहासकारो को ध्यान से पढिये तो दिखेगा की इस्लाम सबसे पहले अतीत पर आकर्मण करता है।जो जमीन वह जीतता है सबसे पहले वहां की प्राचीन पुस्तको,मंदिरों,पूर्वजो की यादो को मिटाने का प्रयत्न करता रहा है।अक्सर आपने देखा और सुना होगा की कट्टरपंथी दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृतियों को तोड़ देते है, असल में ये ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि दूसरे संस्कृति को मिटाया जा सके और झूठ फैलाया जा सके। साथ ही वे नबियों,पैगम्बरों के किस्से जमाने की कोशिश करने में लग जाते है उसका एक ही उद्देश्य होता है कि लोगो में बैठाया जा सके कि इस्लाम सबसे पुराना है। अब कोई सबूत ही नहीं छोड़ा जायेगा तो इस्लाम सबसे पुराना है कहने में आसानी होगी। इसी मकसद से दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृति को जिहादी तत्व तोड़ते है, और अक्सर उनपर मस्जिदें भी बना देते है। ध्वस्त करने का दूसरा उद्देश्य डर बैठाना होता है।जिससे हमेशा यह जताया जा सके की इस्लाम बहुत ताकतवर है उसके पैगम्बर से कोई देवता नही टकरा सकता।

इराक में भी जिहादी तत्वों ने दूसरे उपासकों के पूजा विग्रहों को तोडा। उन्हें नष्ट किया पर अब शोधकर्ताओं को इराक के सुलेमानिया में हिन्दू धर्म के प्रतिक भगवान् राम और हनुमान की आकृति मिली है।शोधकर्ताओं ने इस आकृति को 6000 साल पुरानी बताया है।यानि बनाने वालो ने इसे 6000 साल पहले इस सुलेमानिया में बनाया था, जबकि इस्लाम तो महज 1400 साल पुराना है। साफ़ होता है कि इराक में सनातन धर्म ही था।आकृति में साफ़ देखा जा सकता है की, एक पुरुष खड़े हैं जिनके हाथों में धनुष है, और उनके सामने एक वानर रूपी हनुमान हाथ जोड़े खड़े है। शोधकर्ताओं ने इसे हिन्दू धर्म के श्री राम और हनुमान के रूप में स्वीकार किया है, भारतीय ही नहीं अरबी मुस्लिम भी धर्मांतरित ही है, पर कहने को ये लोग कुछ भी कह सकते है।

संस्कृत और संस्कृति

हालांकि सनातन संस्कृति और संस्कृत भाषा सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये थे लेकिन पश्चिमी शोधकर्ताओं की ही मान लिया जाय तब भी संस्कृत और कई प्राचीन भाषाओं के इतिहास के तथ्यों के अनुसार प्राचीन भारत में सनातन धर्म के इतिहास की शुरुआत ईसा से लगभग 13 हजार पूर्व हुई थी अर्थात आज से 15 हजार वर्ष पूर्व। इस पर विज्ञान ने भी शोध किया और वह भी इसे सच मानता है। जीवन का विकास भी सर्वप्रथम भारतीय प्रायद्वीप में हुआ, जो विश्व की सर्वप्रथम नदी है। यहां पूरे विश्व में डायनासोरों के सबसे प्राचीन अंडे एवं जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है तथा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। 'संस्कृत' का शाब्दिक अर्थ है 'परिपूर्ण भाषा'। संस्कृत से पहले दुनिया छोटी-छोटी, टूटी-फूटी बोलियों में बंटी थी जिनका कोई व्याकरण नहीं था और जिनका कोई भाषा कोष भी नहीं था। भाषा को लिपियों में लिखने का प्रचलन भारत में ही शुरू हुआ। भारत से इसे सुमेरियन, बेबीलोनीयन और यूनानी लोगों ने सीखा। ब्राह्मी और देवनागरी लिपियों से ही दुनियाभर की अन्य लिपियों का जन्म हुआ। ब्राह्मी लिपि एक प्राचीन लिपि है जिसे देवनागरी लिपि से भी प्राचीन माना जाता है। हड़प्पा संस्कृति के लोग इस लिपि का इस्तेमाल करते थे, तब संस्कृत भाषा को भी इसी लिपि में लिखा जाता था। जैन पौराणिक कथाओं में वर्णन है कि सभ्यता को मानवता तक लाने वाले पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की एक बेटी थी जिसका नाम ब्राह्मी था। उसी ने इस लेखन की खोज की। प्राचीन दुनिया में सिंधु और सरस्वती नदी के किनारे बसी सभ्यता सबसे समृद्ध, सभ्य और बुद्धिमान थी। इसके कई प्रमाण मौजूद हैं। यह वर्तमान में अफगानिस्तान से भारत तक फैली थी।

प्राचीनकाल में जितनी विशाल नदी सिंधु थी उससे कहीं ज्यादा विशाल नदी सरस्वती थी। दुनिया का पहला धर्मग्रंथ सरस्वती नदी के किनारे बैठकर ही लिखा गया था।पुरातत्त्वविदों के अनुसार यह सभ्यता लगभग 9,000 ईसा पूर्व अस्तित्व में आई थी, 3,000 ईसापूर्व उसने स्वर्ण युग देखा और लगभग 1800 ईसा पूर्व आते-आते किसी भयानक प्राकृतिक आपदा के कारण यह लुप्त हो गया। एक ओर जहां सरस्वती नदी लुप्त हो गई वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र के लोगों ने पश्चिम की ओर पलायन कर दिया।

सैकड़ों हजार वर्ष पूर्व पूरी दुनिया के लोग कबीले, समुदाय, घुमंतू वनवासी आदि में रहकर जीवन-यापन करते थे। उनके

पास न तो कोई स्पष्ट शासन व्यवस्था थी और न ही कोई सामाजिक व्यवस्था। परिवार, संस्कार और धर्म की समझ तो बिलकुल नहीं थी। ऐसे में केवल भारतीय हिमालयन क्षेत्र में कुछ मुट्ठीभर लोग थे, जो इस संबंध में सोचते थे। उन्होंने ही वेद को सुना और उसे मानव समाज को सुनाया। उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज कबीले में नहीं रहा। वह एक वृहत्तर और विशेष समुदाय में ही रहा।

संपूर्ण धरती पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए-नए रूप में स्थापना की थी । आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है चाहे वह यहूदी धर्म हो, पारसी धर्म हो या ईसाई-इस्लाम धर्म हो। यदि आधुनिक इतिहासकारों और पश्चिमी शोध को भी देखें तो पता चलता है कि ईसा से 2300-2150 वर्ष पूर्व सुमेरिया, 2000-400 वर्ष पूर्व बेबिलोनिया, 2000-250 ईसा पूर्व ईरान,2000-150 ईसा पूर्व मिस्र (इजिप्ट), 1450-500 ईसा पूर्व असीरिया, 1450-150 ईसा पूर्व ग्रीस (यूनान), 800-500 ईसा पूर्व रोम की सभ्यताएं विद्यमान थीं।

इन सभी से भी पूर्व अर्थात आज से 5000 वर्ष पहले महाभारत का युद्ध लड़ा गया था।महाभारत से भी पहले 7300 ईसापूर्व अर्थात आज से 7300+2000=9300 साल पहले रामायण का रचनाकाल प्रमाणित हो चुका है। अब चूँकि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में उससे भी पहले लिखी गई मनुस्मृति का उल्लेख आया है तो आइये अब जानते हैं रामायण से भी प्राचीन मनुस्मृति कब लिखी गयी होगी। रामायण के किष्किन्धा काण्ड में श्री राम अत्याचारी बाली को घायल कर उन्हें दंड देने के लिए मनुस्मृति के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उसे अनुजभार्याभिमर्श का दोषी बताते हुए कहते हैं- मैं तुझे यथोचित दंड कैसे ना देता ?

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्र वत्सलौ।।
गृहीतौ धर्म कुशलैः तथा तत् चरितम् मयाअ।।

वाल्मीकि ४-१८-३०

राजभिः धृत दण्डाः च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गम् आयान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।

वाल्मीकि ४-१८-३१

शसनात् वा अपि मोक्षात् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजा तु अशासन् पापस्य तद् आप्नोति किल्बिषम्।

वाल्मीकि ४-१८-३२

मनुस्मृति

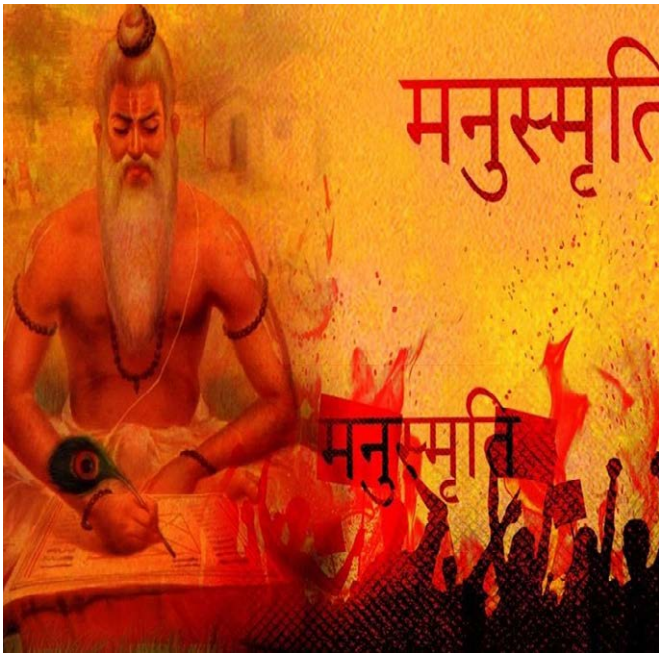

उपरोक्त श्लोक ३० में मनु का नाम आया है और श्लोक ३१ , ३२ भी मनुस्मृति के ही हैं एवं उपरोक्त सभी श्लोक मनु अध्याय ८ के है जिनकी संख्या कुल्लूकभट्ट कि टीकावली में ३१८ व ३१९ है। अतः यह सिद्ध हुआ कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति जो महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में अनेक स्थान पर आयी है वह मनुस्मृति रामायणकाल (9300 साल) के भी पहले विद्यमान थी ।

अब विदेशी प्रमाणों के आधार पर ही जान लेते हैं कि रामायण से भी पहले की मनुस्मृति कितनी प्राचीन है।सन १९३२ में जापान ने बम विस्फोट द्वारा चीन की ऐतिहासिक दीवार को तोड़ा तो उसमे से एक लोहे का ट्रंक मिला जिसमे चीनी भाषा की प्राचीन पांडुलिपियां भरी थी । बताया जा रहा है कि वे हस्तलेख Sir Augustus Fritz George के हाथ लग गयीं। वह उन्हें लंदन ले गये और ब्रिटिश म्युजियम में रख दिया । उन हस्तलेखों को Prof. Anthony Graeme ने चीनी विद्वानो से पढ़वाया। चीनी भाषा के उन हस्तलेखों में से एक में लिखा है -

'मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिकसंस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है' तथा इसमें मनु के श्लोकों कि संख्या 630 भी बताई गई है।

यही विवरण मोटवानी कि पुस्तक 'मनु धर्मशास्त्र :ए सोशियोलॉजिकल एंड हिस्टोरिकल स्टडीज' पेज २३२ पर भी दिया है इसके अतिरिक्त R.P. Pathak कि Education In The Emerging India में भी पेज १४८ पर है।अब देखें चीन की दीवार के बनने का समय लगभग 220–206 BC है अर्थात लिखने वाले ने कम से कम 220BC से पूर्व ही मनु के बारे में अपने हस्तलेख में लिखा 220+10000 =10220 ईसा पूर्व यानी आज से कम से कम 12,220 वर्ष पूर्व तक भारत में

मनुस्मृति पढ़ने के लिए उपलब्ध थी ।

वेद

मनुस्मृति में सैकड़ों स्थानों पर वेदों का उल्लेख आया है। अर्थात वेद मनुस्मृति से भी पहले लिखे गये। अब हिन्दू धर्म के आधार वेदों की प्राचीनता जानते हैं। वेदों का रचनाकाल इतना प्राचीन है कि इसके बारे में सही-सही किसी को ज्ञात नहीं है। सनातन मान्यता के अनुसार वेद सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये। पाश्चात्य विद्वान वेदों के सबसे प्राचीन मिले पांडुलिपियों के हिसाब से वेदों के रचनाकाल के बारे में अनुमान लगाते हैं। जो अत्यंत हास्यास्पद है। क्योंकि वेद लिखे जाने से पहले हजारों सालों तक पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाए जाते थे। इसीलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है।

उस काल में भोजपत्रों पर लिखा जाता था अतः यदि उस कालखण्ड में वेदों को हस्तलिखित भी किया गया होगा तब भी आज हजारों साल बाद उन भोजपत्रों का मिलना असम्भव है। फिर भी वेदों पर सबसे अधिक शोध करने वाले स्वामी दयानंद जी ने अपने ग्रंथों में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पुरुष सूक्त (ऋक १०.९०, यजु ३१ , अथर्व १९.६) में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है कि परम पुरुष परमात्मा ने भूमि उत्पन्न की, चंद्रमा और सूर्य उत्पन्न किये, भूमि पर भांति भांति के अन्न उत्पन्न किये,पशु पक्षी आदि उत्पन्न किये। उन्ही अनंत शक्तिशाली परम पुरुष ने मनुष्यों को उत्पन्न किया और उनके कल्याण के लिए वेदों का उपदेश दिया।

उन्होंने शतपथ ब्राह्मण से एक उद्धरण दिया और बताया-

'अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।।

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन तीनों ऋषियों की आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 135)

इसलिए वेदों की उत्पत्ति का काल मनुष्य जाति की उत्पत्ति के साथ ही माना जाता है। स्वामी दयानंद की इस मान्यता का समर्थन ऋषि मनु और ऋषि वेदव्यास भी करते हैं। परमात्मा ने सृष्टी के आरंभ में वेदों के शब्दों से ही सबवस्तुओं और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की हैं. (मनुस्मृति १.२१)

स्वयंभू परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में वेद रूप नित्य दिव्यवाणी का प्रकाश किया जिससे मनुष्यों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं (वेद व्यास,महाभारत शांति पर्व २३२/२४)

कुल मिलाकर वेदों, सनातन धर्म एवं सनातनी परम्परा की शुरूआत कब हुई, यह अभी भी एक शोध का विषय है। इसका मतलब कि हजारों वर्ष ईसा पूर्व भारत में एक पूर्ण विकसित सभ्यता थी। और यहाँ के लोग पढ़ना-लिखना भी जानते थे। इसके बाद भारतीय संस्कृति का प्रकाश धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैलने लगा। तब भारत का 'धर्म' दुनियाभर में अलग-अलग नामों से प्रचलित था। अरब और अफ्रीका में जहां सामी, सबाईन, मुशरिक, यजीदी, अश्शूर, तुर्क, हित्ती, कुर्द, पैगन आदि इस धर्म के मानने वाले समाज थे तो रोम, रूस, चीन व यूनान के प्राचीन समाज के लोग सभी किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म का पालन करते थे। फिर ईसाई और बाद में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को नष्ट करने वाले धर्म इस्लाम ने इन्हें विलुप्त सा कर दिया।

मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। जीसस क्राइस्ट्स से बहुत पहले वहां पर हिन्दू धर्म प्रचलित था। अफ्रीका में 6,000 वर्ष पुराना एक शिव मंदिर पाया गया और चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, लाओस, जापान में हजारों वर्ष पुरानी विष्णु, राम और हनुमान की प्रतिमाएं मिलना इस बात का प्रमाण है कि सनातन वैदिक हिन्दू धर्म संपूर्ण धरती पर था।

उदाहरण के तौर पर एरिक वॉन अपनी बेस्ट सेलर पुस्तक 'चैरियट्स ऑफ गॉड्स' में लिखते हैं -

विश्व की सबसे प्राचीन सुमेरियन सभ्यता(2300 B.C.) से भी प्राचीन लगभग 5,000 वर्ष पुराने महाभारत के तत्कालीन कालखंड में उन्नत सामाजिक व्यवस्था, उन्नत शासन प्रणाली, उन्नत भाषा आदि का विस्तारित विवरण एवं उक्त कालखंड के योद्धाओं द्वारा आज के अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के समान ही अनेक शस्त्रों का प्रयोग केवल कल्पना मात्र नहीं हो सकता। वे किसी ऐसे अस्त्र के बारे में कैसे जानते थे जिसे चलाने से 12

साल तक उस धरती पर सूखा पड़ जाता, ऐसा कोई अस्त्र जो इतना शक्तिशाली हो कि वह माताओं के गर्भ में पलने वाले शिशु को भी मार सके? इसका अर्थ है कि ऐसा कुछ न कुछ तो था जिसका ज्ञान आगे नहीं बढ़ाया गया अथवा लिपिबद्ध नहीं हुआ और गुम हो गया।

प्राचीन संस्कृति में मनोरंजन

प्राचीन भारत बहुत ही समृद्ध और सभ्य देश था, जहां हर तरह के अस्त्र शस्त्र प्रयोग किये जाते थे, तो वहीं मानव के मनोरंजन के भरपूर साधन भी थे। ऐसा कोई खेल या मनोरंजन का साधन नहीं है जिसका आविष्कार भारत में न हुआ हो। आज शेष विश्व में जितनी भी संस्कृतियाँ, सामाजिक व्यवस्थाएँ एवं धार्मिक मान्यताएँ प्रचलित हैं; प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहन अध्ययन करने से ये प्रमाणित हो जाता है कि ये सभी भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से पूरी तरह प्रभावित हैं। कई विश्व विख्यात विद्वानों एवं वैज्ञानिक शोधों ने ये प्रमाणित भी किया है।

पानी के जहाज

संस्कृत और अन्य भाषाओं के ग्रंथों में इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय लोग समुद्र में जहाज द्वारा अरब और अन्य देशों की यात्रा करते थे और सनातन धर्म एवं सभ्यता का परिचय कराते थे। वहीं किसी भी ग्रंथ एवं उल्लेखों में अपने धर्म एवं सभ्यता को प्रचारित करने में किसी भी देश या मानव समूहों में किसी भी प्रकार की जबरदस्ती एवं बलप्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन भारतायों का लम्बी यात्राएं कर विश्व के विभिन्न स्थानों पर जाना केवलमात्र शेष विश्व को सभ्यता से परिचय कराना था।

वायुयान

विमानों से यात्रा करने की कई कहानियां भारतीय ग्रंथों में भरी पड़ी हैं जो इतनी अधिक बार उल्लेखित हुई हैं कि इसे असत्य नहीं माना जा सकता। यहीं नहीं, कई ऐसे ऋषि और मुनि भी थे, जो योगबल से अंतरिक्ष में दूसरे ग्रहों पर जाकर पुनः धरती पर लौट आते थे।वर्तमान समय में भारत की इस प्राचीन तकनीक और वैभव का खुलासा कोलकाता संस्कृत कॉलेज के संस्कृत प्रोफेसर दिलीप कुमार कांजीलाल ने 1979 में एंशियंट एस्ट्रोनट सोसाइटी (Ancient Astronaut Society) की म्युनिख (जर्मनी) में संपन्न छठी कांग्रेस के दौरान अपने एक शोध पत्र से किया। जिससे विश्व आश्चर्यचकित हो गया था। उन्होंने उड़ सकने वाले प्राचीन भारतीय विमानों के बारे में एक उद्बोधन दिया और पर्चा प्रस्तुत किया।

संगीत और वाद्य यंत्र

संगीत और वाद्ययंत्रों का अविष्कार भारत में ही हुआ है। अत्याधुनिक पाश्चात्य वाद्ययंत्र इन्हीं के रूपान्तर हैं। हिन्दू धर्म का नृत्य, कला, योग और संगीत से गहरा नाता रहा है। हिन्दू धर्म मानता है कि ध्वनि और शुद्ध प्रकाश से ही ब्रह्मांड की रचना हुई है। आत्मा इस जगत का कारण है। चारों वेद, स्मृति, पुराण और गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को साधने के हजारों हजार उपाय बताए गए हैं। उन उपायों में से एक है संगीत। संगीत की कोई भाषा नहीं होती। संगीत आत्मा के सबसे ज्यादा नजदीक माना जाता था।

आज भी विग्रहों में हिन्दुओं के लगभग सभी देवी और देवताओं केपास अपना एक अलग वाद्य यंत्र है। संगीत का सर्वप्रथम ग्रंथ चार वेदों में से एक सामवेद ही है। इसी के आधार पर भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र लिखा और बाद में संगीत रत्नाकर, अभिनव राग मंजरी लिखा गया। दुनियाभर के संगीत के ग्रंथ सामवेद से प्रेरित हैं।

प्राचीन भारतीय नृत्य शैली से ही दुनियाभर की नृत्य शैलियां विकसित हुई है। भारतीय नृत्य मनोरंजन के लिए नहीं बना था। भारतीय नृत्य ध्यान की एक विधि के समान कार्य करता है। मूलतः यह प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्मित एक योग क्रिया है।

सामवेद में संगीत के साथ साथ नृत्य का भी उल्लेख मिलता है। हड़प्पा सभ्यता में नृत्य करती हुई लड़की की मूर्ति पाई गई है। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र नृत्यकला का सबसे प्रथम व प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसको पंचवेद भी कहा जाता है। यही नहीं सृष्टि के आरम्भिक हिन्दू ग्रंथों और पुराणों में भी शिव और पार्वती के नृत्य का वर्णन मिलता है।

ध्वनि की खोज

भारतीय ऋषियों ने ऐसी सैकड़ों ध्वनियों को खोजा, जो प्रकृति में पहले से ही विद्यमान है। उन ध्वनियों के आधार पर ही उन्होंने मंत्रों की रचना की, संस्कृत भाषा की रचना की और ध्यान एवं स्वास्थ्य में लाभदायक ध्यान ध्वनियों की रचना की। इसके अलावा उन्होंने ध्वनि विज्ञान को अच्छे से समझकर इसके माध्यम से शास्त्रों की रचना की और प्रकृति को संचालित करने वाली ध्वनियों की खोज भी की। आज का विज्ञान अभी भी संगीत और ध्वनियों के महत्व और प्रभाव की खोज में लगा हुआ है, लेकिन ऋषि-मुनियों से अच्छा कोई भी संगीत के रहस्य और उसके विज्ञान को नहीं जान पाया।

ज्ञान, कला, संस्कृति, शिक्षा

भारत में प्राचीनकाल से ही ज्ञान को अत्यधिक महत्व

दिया जाता था। कला, विज्ञान, गणित और ऐसे अनगिनत क्षेत्र हैं जिनमें भारतीय योगदान अनुपम है। आधुनिक युग के ऐसे बहुत से आविष्कार हैं, जो प्राचीन भारतीय शोधों के निष्कर्षों पर आधारित हैं।प्राचीन भारतीयों ने एक ओर जहां पिरामिडनुमा मंदिर बनाए तो दूसरी ओर स्तूपनुमा मंदिर बनाकर दुनिया को चमत्कृत कर दिया। आज दुनियाभर के धर्म के प्रार्थना स्थल इसी शैली में बनते हैं। तब हिन्दू मंदिरों को देखना सबसे अद्भुत माना जाता था। मौर्य, गुप्त और विजयनगरम साम्राज्य के दौरान बने हिन्दू मंदिरों की स्थापत्य कला को देखकर हर कोई दांतों तले अंगुली दबाए बिना नहीं रह पाता। अजंता-एलोरा की गुफाएं हों या वहां का विष्णु मंदिर। कोणार्क का सूर्य मंदिर हो या जगन्नाथ मंदिर या कंबोडिया के अंकोरवाट का मंदिर हो या थाईलैंड के मंदिर, उक्त मंदिरों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में किस तरह के मंदिर बनते होंगे। समुद्र में डूबी कृष्ण की द्वारिका के अवशेषों की जांच से पता चलता है कि आज से 5,000 वर्ष पहले जब पूरी दुनियाँ जंगलों में नंगी घूमती थी तब भी हिन्दुओं के मंदिर और महल अत्यंत भव्य होते थे और हिन्दू सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान से परिपूर्ण । उल्लेखों के अनुसार उनमें प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान, कला, संस्कृति, दर्शन, खगोलविज्ञान आदि से सम्बन्धित इतनी अधिक संख्या में पुस्तकें थीं जो कई महीनों तक जलती रहीं और विश्व ने मानव-सभ्यता की इस लिपिबद्ध अनमोल धरोहर को सदा के लिए खो दिया। इसके साथ ही दुनियाँ की सबसे प्राचीन, सभ्य एवं समृद्ध हिन्दू सभ्यता का पराभव काल आरम्भ हुआ जो कालांतर में मुगल लुटेरों से लेकर अंग्रेजों के शासनकाल तक चलता रहा।

आज देश के विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चे वामपंथी इतिहासकारों के द्वारा लिखा गया भारत का नकली इतिहास पढ़ते हैं जिसमें उन्हें बताया जाता है मानों केवल मुगलों के शासन में ही भारत का इतिहास निहित है। उसके पहले का स्वर्णिम काल केवल मनगढ़ंत बातें हैं। आज मैकाले की शिक्षा पद्धति के कारण छात्र अपने ही अतीत से दूर हो गये हैं, एवं अपनी ही संस्कृति का उपहास करते हैं। परन्तु अब झूठ से पर्दा उठने लगा है। अब आशा बँधने लगी है कि भारत अपने खोये गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। यह प्रामाणिक है कि चीन, रूस, अमेरिका, इंडोनेशिया,कंबोडिया, वियतनाम, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड,फिलीपींस और जर्मनी से लेकर धरती के कोने कोने में भगवान शिव, भगवान गणेश,भगवान राम, श्री हनुमान जी समेत अनेक सनातन वैदिक हिन्दू देवी देवताओं के प्राचीन विग्रह मिल रहे हैं। स्वाभाविक है कि यह प्राचीनता का वैभव ही विश्व मे शांति का वाहक बनेगा।

।। नारायण।।

संदर्भ आलेख

विश्व मे मानवता की मूल सनातन संस्कृति

शिव प्रताप शुक्ल

सनातन, अर्थात जो सदा से ही विद्यमान है। सनातन, अर्थात जो समय के साथ अविरल प्रवाहमान है। सनातन जिसे वैदिक हिन्दू संस्कृति के रूप में विश्व प्रमाणित करता है। सनातन , अर्थात जो पृथ्वी की सभी सभ्यताओं के मूल निहित है। सनातन जो हिन्दू संस्कृति का जीवन संविधान है। सनातन जिसमे पृथ्वी के समस्त प्राणियों, वनस्पतियों , चर, अचर , समस्त के कल्याण की शक्ति है। जो भारत वर्ष की आत्मा है। जिसमे विश्व का कल्याण निहित है। इस सनातन की प्राचीन उपस्थिति के प्रमाण से आज विश्व का प्रत्येक भूभाग भरा पड़ा है। सनातन में सांस्कृतिक उपासना और जीवन शैली के प्रमाण आधुनिक विश्व के प्रत्येक भूभाग में मिल रहे हैं और विश्व उन्हें स्वीकार कर रहा है। जब मैं आधुनिक विश्व की बात लिख रहा हूँ तो यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि प्राचीन और वर्तमान भूगोल में परिवर्तन के कारण यह शब्दावली प्रयोग करना आवश्यक है। यह इसलिए बहुत आवश्यक है क्योंकि कुछ आधुनिक शिक्षा से उपजे लोग भारत को 70 वर्ष पुराना राष्ट्र प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं। उन्हें यह बिल्कुल नही पता कि भारत है क्या, कितना पुराना या नया है। भारत का भूगोल कब से कैसे बनता है। विष्णु पुराण में स्पष्ट लिखा है-

उत्तरं यत समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं।

वर्ष तद भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

इसका अर्थ यह है कि समुद्र के उत्तर से ले कर हिमालय के दक्षिण में जो देश है वही भारत है और यहाँ के लोग भारतीय हैं। अब यहां यह जान लेना भी बहुत आवश्यक है कि समुद्र की अवस्थिति वास्तव में है कहाँ। सबसे पहले बात करते हैं पृथ्वी के भूगोल यानि ज्योग्राफी की। आज हमे वर्तमान की ज्योग्राफी में यह पढ़ाया जाता है कि पैंजिया पृथ्वी का पहला महाद्वीप या यूं कहे सुपर महाद्वीप था। अन्य सभी नवीन महाद्वीप (एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, यूरोप, अंटार्कटिका एवं ऑस्ट्रेलिया) का जन्मदाता भी यही महाद्वीप है। टेकटोनिक प्लेट्स में गति बदलाव या विखंडन के कारण पैंजिया महाद्वीप में खंडन हुआ और यह टूटकर इन सात महाद्वीपों में बंट गया। गोंडवाना पैंजिया के दक्षिणी भाग को कहते हैं। गोंडवाना भूमि में प्रायद्वीप भारत, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका और अंटार्कटिका समाहित है। अंगारा पैंजिया के उत्तरी भाग को कहते हैं। अंगारा भूमि में एशिया (प्रायद्वीपीय भारत को छोड़कर), उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप समाहित है।

इससे पूर्व कि सनातन संस्कृति के वैश्विक परिदृश्य को रेखांकित किया जाय, यह

महाभारत में पृथ्वी का वर्णन आता है। सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भांति गोलाकार स्थित है, जैसे पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखाई देता है। इसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशों में महान शश (खरगोश) दिखाई देता है। अर्थात, दो अंशों में पिप्पल का अर्थ पीपल के दो पत्तों और दो अंशों में शश अर्थात खरगोश की आकृति के समान दिखाई देता है। आप कागज पर पीपल के दो पत्तों और दो खरगोश की आकृति बनाइए और फिर उसे उल्टा करके देखिए, आपको धरती का मानचित्र दिखाई देगा।

लेखक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ,संसंद की उच्च सदन के सदस्य और भाजपा के मुख्य सचेतक एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।

जान लेना बहुत आवश्यक है कि वास्तव में भारत के अस्तित्व के प्रमाण किस रूप में लाखों वर्षो से हमारे शास्त्रीय परंपराओं में व्यवस्थित हैं।प्रामाणिक ग्रंथ मत्स्यमहापुराण में सभी सात प्रधान महाद्वीपों के बारे में बताया गया है। सात द्वीपों में जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप,शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंच द्वीप, शाकद्वीप तथा पुष्करद्वीप का वर्णन है। जम्बूद्वीप का विस्तार से भौगोलिक वर्णन है। अर्थात आज जिसे एशिया के रूप में हम पाते है वही जम्बूद्वीप के नाम से जाना जाता था। इस द्वीप का माप और भूगोल भी उपलब्ध है। शास्त्र कहता है-

'जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्य संस्थितः,

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्,

हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज।

रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्यम्,

उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा।

नव साहस्त्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम्,

इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः।

भद्राश्चं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे।

जम्बूद्वीप को बाहर से लाख योजन वाले खारे पानी के वलयाकार समुद्र ने चारों ओर से घेरा हुआ है। जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। जम्बू (जामुन) नामक वृक्ष की इस द्वीप पर अधिकता के कारण इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप रखा गया था।

इस तथ्य को विष्णु पुराण इस रूप में कहता है-

एकादश शतायामाः पादपागिरिकेतवः जंबूद्वीपस्य सांजबूर्नाम हेतुर्महामुने।

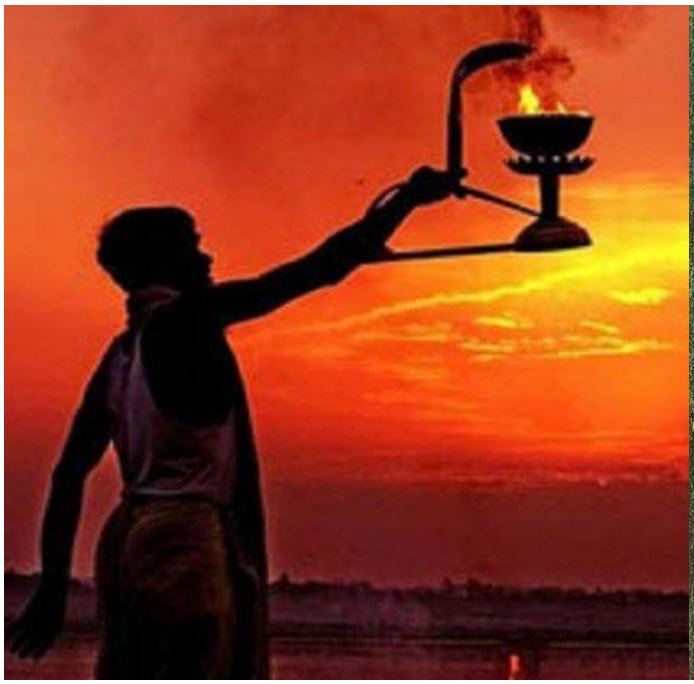

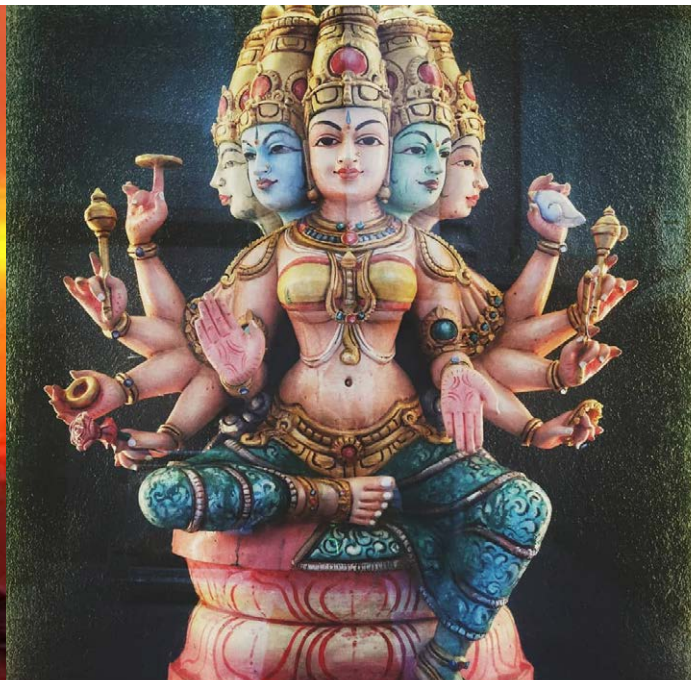

भारतवर्ष का अर्थ है राजा भरत का क्षेत्र और इन्ही राजा भरत के पुत्र का नाम सुमति था । इस विषय में वायु पुराण कहता है—

सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूदीपं निबोधत।

अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम।।

प्रियव्रतोअभ्यषिञ्चतं जम्बूद्वीपेश्वरंनृपम्।।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।

ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरूषोअनुजः।।

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत।

ऋग्वेद में इस स्थान को 'सप्तसिंधु' प्रदेश कहा गया है। ऋग्वेद के नदी सूक्त (10.75) में इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियों का वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार हैं- कुभा (काबुल नदी), क्रुगु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सिंधु, परुष्णी (रावी), शुतुद्री (सतलज), वितस्ता (झेलम), सरस्वती, यमुना तथा गंगा।

महाभारत में पृथ्वी का वर्णन आता है। सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भांति गोलाकार स्थित है, जैसे पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखाई देता है। इसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशों में महान शश (खरगोश) दिखाई देता है। अर्थात, दो अंशों में पिप्पल का अर्थ पीपल के दो पत्तों और दो अंशों में शश अर्थात खरगोश की आकृति के समान दिखाई देता है। आप कागज पर पीपल के दो पत्तों और दो खरगोश की आकृति बनाइए और फिर उसे उल्टा करके देखिए, आपको धरती का मानचित्र दिखाई देगा। महाभारत के भीष्म पर्व में महर्षि वेदव्यास जी लिखते हैं-

'सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन।

परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः॥

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः।

एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्।।

इसी प्रकार ब्रह्म पुराण, अध्याय 18 में जम्बूद्वीप के महान होने का प्रतिपादन है।इसमे वर्णित है कि भारत भूमि में लोग तपश्चर्या करते हैं, यज्ञ करने वाले हवन करते हैं तथा परलोक के लिए आदरपूर्वक दान भी देते हैं। जम्बूद्वीप में सत्पुरुषों के द्वारा यज्ञ भगवान् का यजन हुआ करता है। यज्ञों के कारण यज्ञ पुरुष भगवान् जम्बूद्वीप में ही निवास करते हैं। इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष श्रेष्ठ है। यज्ञों की प्रधानता के कारण इसे (भारत को) को कर्मभूमि तथा और अन्य द्वीपों को भोग- भूमि कहते हैं।

तपस्तप्यन्ति यताये जुह्वते चात्र याज्विन।।

दानाभि चात्र दीयन्ते परलोकार्थ मादरात्॥

पुरुषैयज्ञ पुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते।।

यज्ञोर्यज्ञमयोविष्णु रम्य द्वीपेसु चान्यथा॥

अत्रापि भारतश्रेष्ठ जम्बूद्वीपे महामुने।।

यतो कर्म भूरेषा यधाऽन्या भोग भूमयः॥

इसी तरह अगर शक्तिपीठों का भौगोलिक स्थिति देखे तो वे बलूचिस्तान से लेकर त्रिपुरा, कश्मीर से कन्याकुमारी बांग्लादेश और जाफना तक फैले हुए हैं। यह एक बनावटी स्थिति नहीं है। शक्तिपीठों की वैश्विक उपस्थिति प्रमाणित है। अभी हाल ही में

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री ने बांग्लादेश में एक शक्तिपीठ में जाकर पूजा भी की थी।

आधुनिक विश्व और सनातन वैदिक हिंदुत्व

अब बात आती है कि यह जो विशाल भूभाग पर पल्लवित पुष्पित सनातन संस्कृति रही है इसका शेष विश्व से क्या संबंध है। इससे पूर्व कि विषय के विस्तार में चलें, यहां एक उक्ति में यह लिखना समीचीन लगता है कि पृथ्वी यदि कहीं भी जीवन है और मनुष्य पहुँच सका है तो यह यकीन मानिए उसके मूल में सनातन वैदिक संस्कृति ही रही है जो किसी न किसी रूप में वहां की सभ्यता में आज भी विद्यमान है।

इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जब आज पश्चिम का आधुनिक विज्ञान भी यह मानने लगा है कि धरती पर मनुष्य तब से है जब तीनो अब्रह्मियन पंथों या मजहबो का कहीं दूर दूर तक अस्तित्व नही था। इन मजहबो का कुल इतिहास 4500 वर्ष पुराना है। सबसे पहले यहूदी, फिर इसाई और महज 1400 साल पहले इस्लाम। स्वाभाविक है कि इस काल खंड से पूर्व उन स्थानों पर जो मनुष्य रहते थे वे यदि यहूदी नही थे, इसाई नही थे, इस्लाम के नही थे तो कुछ अन्य उपासना पद्धति के तो रहे ही होंगे।

आज दुनिया के अनेक देशों में पुरातात्विक या सामान्य खुदाई में जिस प्रकार से सनातन वैदिक संस्कृति के स्थापित देवी देवताओं की प्रतिमाएं मिल रही हैं , अब उन पर और उन स्थानों के नए इतिहास पर भी गहन शोध की आवश्यकता आ गयी है। मैक्सिको, अमेरिका, रूस, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्की, सीरिया, इराक, स्पेन, इंडोनेशिया, चीन आदि सभी जगह पर हिन्दू धर्म से जुड़े साक्ष्य पाए गए हैं। विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म सनातन हिन्दू वैदिक ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी।

'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है। जिस प्रकार के पुरातात्विक प्रमाण इस समय मिल रहे हैं वे प्रमाणित करते हैं कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं से सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का सीधा जुड़ाव रहा है।पृथ्वी पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए-नए रूप में स्थापना की थी। आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है चाहे वह यहूदी, यजीदी, रोमा, पारसी, बौद्ध धर्म हो या ईसाई-इस्लाम जैसे मजहब ही क्यों न हो।भारतीय लोगों ने इस दौर में विश्वमभर में विशालकाय मंदिर, भवन और नगरों का निर्माण कार्य किया किया था। हिन्दू धर्म ने अपनी जड़ें यूरोप से लेकर एशिया तक फैला रखी थी, जिसके प्रमाण आज भी मिलते हैं। आज हम आपको विश्व की ऐसी ही जगहों के बारे में बता रहे हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि यहां कभी सनातन वैदिक हिन्दू धर्म अपने चरम पर हुआ करता था।

इंडोनेशिया

इसी क्रम में बहुत आवश्यक लगता है कि इंडोनेशिया की चर्चा की जाय। यहां के साक्ष्य ऐसे हैं जो अचंभित भी करते हैं और गर्व की अनुभूति भी कराते हैं।इंडोनेशिया कभी सनातन वैदिक हिन्दू राष्ट्र हुआ करता था, लेकिन इस्लामिक उत्थान के बाद यह आज मुस्लिम राष्ट्र है। शोधकर्ताओं का मानना है कि जहां आज इंडोनेशियन इस्लामिक यूनिवर्सिटी है वहां कभी हिन्दू मंदिर हुआ करता था, जिसमें शिव और गणेश की पूजा की जाती थी। यहां से एक ऐतिहासिक शिवलिंग भी मिला है। इंडोनेशिया के एक द्वीप है बाली जो हिन्दू बहुल क्षेत्र है। यहां के हिन्दुओं ने अपने धर्म और संस्कृति को नहीं छोड़ा था। बाली में एक इमारत के निर्माण की खुदाई के दौरान मजदूरों को मंदिर के कुछ अंश मिले जिसके बाद यह खबर बाली के ऐतिहासिक संरक्षण विभाग को दी गई जिसने खुदाई करने पर एक विशाल हिन्दू इमारत को पाया, जो कभी हिन्दू धर्म का केंद्र था। यह विशालकाय मंदिर आज बाली द्वीप की पहचान बन गया है।

इंडोनेशिया के द्वीप बाली द्वीप पर हिन्दुओं के कई प्राचीन मंदिर हैं, जहां एक गुफा मंदिर भी है। इस गुफा मंदिर को गोवा गजह गुफा और एलीफेंटा की गुफा कहा जाता है। 19 अक्टूबर 1995 को इसे विश्व धरोहरों में शामिल किया गया। यह गुफा भगवान शंकर को समर्पित है। यहां 3 शिवलिंग बने हैं। देश-विदेश से पर्यटक इसे देखने आते हैं।

हमारे प्राचीन साहित्य और शास्त्रों में इसका विशद वर्णन आता है। सुकेश के तीन पुत्र थे- माली, सुमाली और माल्यवान। माली, सुमाली और माल्यवान नामक तीन दैत्यों द्वारा त्रिकुट सुबेल (सुमेरु) पर्वत पर बसाई गई थी लंकापुरी। माली को मारकर देवों और यक्षों ने कुबेर को लंकापति बना दिया था। रावण की माता कैकसी सुमाली की पुत्री थी। अपने नाना के उकसाने पर रावण ने अपनी सौतेली माता इलविल्ला के पुत्र कुबेर से युद्ध की ठानी थी और लंका को फिर से राक्षसों के अधीन लेने की सोची। रावण ने सुंबा और बाली द्वीप को जीतकर अपने शासन का विस्तार करते हुए अंगद्वीप, मलय द्वीप, वराह द्वीप, शंख द्वीप, कुश द्वीप, यव द्वीप और आंध्रालय पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद रावण ने लंका को अपना लक्ष्य बनाया। लंका पर कुबेर का राज्य था, परंतु पिता ने लंका के लिए रावण को दिलासा दी तथा कुबेर को कैलाश पर्वत के आसपास के त्रिविष्टप (तिब्बत) क्षेत्र में रहने के लिए कह दिया। इसी तारतम्य में रावण ने कुबेर का पुष्पक विमान भी छीन लिया। आज के युग अनुसार रावण का राज्य विस्तार, इंडोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, दक्षिण भारत के कुछ राज्य और संपूर्ण श्रीलंका पर रावण का राज था।

कंबोज, कम्पूचिया अब कंबोडिया

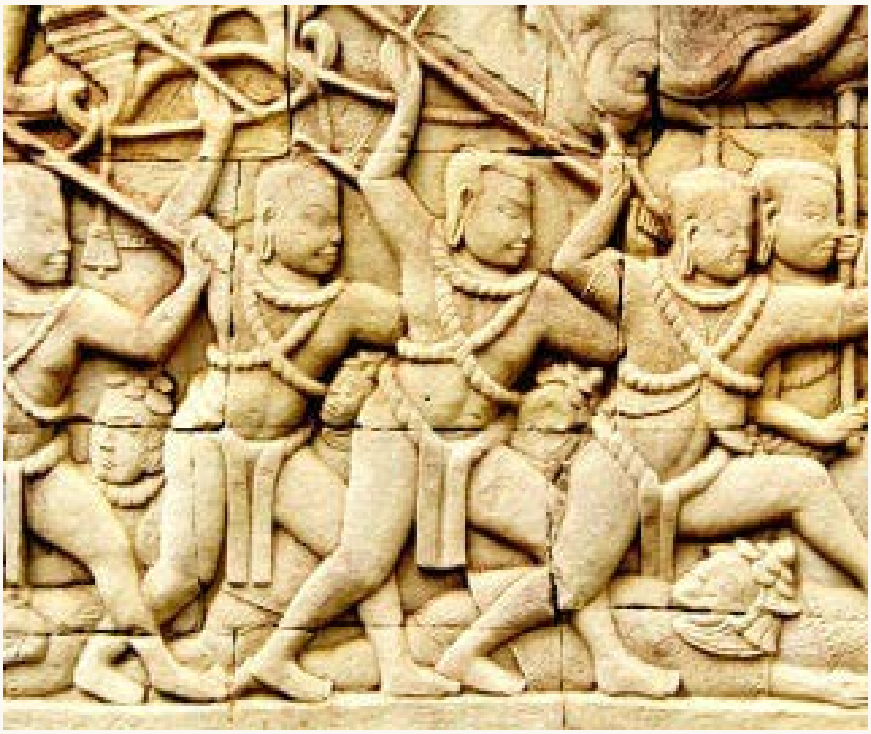

अब बात करते हैं कंबोज देश यानी आधुनिक कंबोडिया की। विश्व का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर परिसर तथा विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक स्मारक कंबोडिया में स्थित है। यह कंबोडिया के अंकोर में है जिसका पुराना नाम 'यशोधरपुर' था। इसका निर्माण सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीय (1112-53ई.) के शासनकाल में हुआ था। यह विष्णु मन्दिर है जबकि इसके पूर्ववर्ती शासकों ने प्रायः शिवमंदिरों का निर्माण किया था। कंबोडिया में बड़ी संख्या में हिन्दू और बौद्ध मंदिर हैं, जो इस बात की गवाही देते हैं कि कभी यहां भी हिन्दू धर्म अपने चरम पर था।

पौराणिक काल का कंबोजदेश

कल का कंपूचिया और आज का कंबोडिया। पहले हिंदू रहा और फिर बौद्ध हो गया। सदियों के काल खंड में 27 राजाओं ने राज किया। कोई हिंदू रहा, कोई बौद्ध। यही वजह है कि पूरे देश में दोनों धर्मों के देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। भगवान बुद्ध तो हर जगह हैं ही, लेकिन शायद ही कोई ऐसी खास जगह हो, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कोई न हो और फिर अंगकोर वाट की बात ही निराली है। ये दुनिया का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर है।

विश्व विरासत में शामिल अंगकोर वाट मंदिर-समूह को अंगकोर के राजा सूर्यवर्मन द्वितीय ने बारहवीं सदी में बनवाया था। चौदहवीं सदी में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ने पर शासकों ने इसे बौद्ध स्वरूप दे दिया। बाद की सदियों में यह गुमनामी के अंधेरे में खो गया। एक फ्रांसिसी पुरातत्वविद ने इसे खोज निकाला। आज यह मंदिर जिस रूप में है, उसमें भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का बहुत योगदान है। सन् 1986 से 93 तक एएसआई ने यहाँ संरक्षण का काम किया था।

अंगकोर वाट की दीवारें रामायण और महाभारत की कहानियाँ कहती हैं। यह मंदिर लगभग एक स्क्वेयर मील क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहां की दीवारों पर पर छपे चित्र और उकेरी गई मूर्तियां हिन्दू धर्म के गौरवशाली इतिहास की कहानी को बयां करती हैं। सीताहरण, हनुमान का अशोक वाटिका में प्रवेश, अंगद प्रसंग, राम-रावण युद्ध, महाभारत जैसे अनेक दृश्य बेहद बारीकी से उकेरे गए हैं। अंगकोर वाट के आसपास कई प्राचीन मंदिर और उनके भग्नावशेष मौजूद हैं। इस क्षेत्र को अंगकोर पार्क कहा जाता है। सियाम रीप क्षेत्र अपने आगोश में सवा तीन सौ से ज्यादा मंदिर समेटे हुए है।

रूस में सनातन वैदिक हिंदुत्व

अब चर्चा करते हैं आधुनिक विश्व की एक महाशक्ति रूस की प्राचीनता के बारे में । यहां तो सनातन संस्कृति के प्रमाणों के अकूत भंडार ही दिखता है।अभी महज एक हजार वर्ष पहले रूस ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। माना जाता है कि इससे पहले यहां असंगठित रूप से हिन्दू धर्म प्रचलित था और उससे भी पहले संगठित रूप से वैदिक पद्धति के आधार पर हिन्दू धर्म प्रचलित था। वैदिक धर्म का पतन होने के कारण यहां मनमानी पूजा और पुजारियों का बोलबाला हो गया अर्थात हिन्दू धर्म का पतन हो गया।

यही कारण था कि 10वीं शताब्दी के अंत में रूस की कियेव रियासत के राजा व्लादीमिर चाहते थे कि उनकी रियासत के लोग देवी-देवताओं को मानना छोड़कर किसी एक ही ईश्वर की पूजा करें। इसके बाद रूसी राजा व्लादीमिर ने यह तय कर लिया कि वह और उसकी कियेव रियासत की जनता ईसाई धर्म को ही अपनाएंगे। रूस की कियेव रियासत के राजा व्लादीमिर ने जब आर्थोडॉक्स ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और अपनी जनता से भी इस धर्म को स्वीकार करने के लिए कहा तो उसके बाद भी कई वर्षों तक रूसी जनता अपने प्राचीन देवी और देवताओं की पूजा भी करते रहे थे। बाद में ईसाई पादरियों के निरंतर प्रयासों के चलते रूस में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हो सका है और धीरे-धीरे रूस के प्राचीन धर्म को नष्ट कर दिया गया। प्राचीनकाल के रूस में लोग जिन शक्तियों की पूजा करते थे, उन्हें तथाकथित विद्वान लोग अब प्रकृति-पूजा कहकर पुकारते हैं। सबसे प्रमुख देवता थे- विद्युत देवता या बिजली देवता। आसमान में चमकने वाले इस वज्र-देवता का नाम पेरून था। कोई भी संधि या समझौता करते हुए इन पेरून देवता की ही कसमें खाई जाती थीं और उन्हीं की पूजा मुख्य पूजा मानी जाती थी। प्राचीनकाल में रूस के दो और देवताओं के नाम थे- रोग और स्वारोग। सूर्य देवता के उस समय के जो नाम हमें मालूम हैं, वे हैं- होर्स, यारीला और दाझबोग। सूर्य के अलावा प्राचीनकालीन रूस में कुछ मशहूर देवियां भी थीं जिनके नाम हैं- बिरिगिन्या, दीवा, जीवा, लादा, मकोश और मरेना। प्राचीनकालीन रूस की यह मरेना नाम की देवी जाड़ों की देवी थी और उसे मौत की देवी भी माना जाता था। हिन्दी का शब्द मरना कहीं इसी मरेना देवी के नाम से तो पैदा नहीं हुआ? इसी तरह रूस का यह जीवा देवता कहीं हिन्दी का 'जीव' ही तो नहीं? 'जीव' यानी हर जीवंत आत्मा। रूस में यह जीवन की देवी थी। रूस में आज भी पुरातत्ववेताओं को कभी-कभी खुदाई करते हुए प्राचीन रूसी देवी-देवताओं की लकड़ी या पत्थर की बनी मूर्तियां मिल जाती हैं। कुछ मूर्तियों में दुर्गा की तरह अनेक सिर और कई-कई हाथ बने होते हैं। रूस के प्राचीन देवताओं और हिन्दू देवी-देवताओं के बीच बहुत ज्यादा समानता है। ध्यान देने वाला तथ्य यह है कि प्राचीनकाल में रूस के मध्यभाग को जम्बूद्वीप का इलावर्त कहा जाता था। यहां देवता और दानव लोग रहते थे। अभी कुछ वर्ष पूर्व ही रूस में वोल्गा प्रांत के स्तारया मायना गांव में विष्णु की मूर्ति मिली थी जिसे 7-10वीं ईस्वी सन् का बताया गया। यह गांव 1700 साल पहले एक प्राचीन और विशाल शहर हुआ करता था। स्तारया मायना का अर्थ होता है गांवों की मां। उस काल में यहां आज की आबादी से 10 गुना ज्यादा आबादी में लोग रहते थे। माना जाता है कि रूस में वाइकिंग या स्लाव लोगों के आने से पूर्व शायद वहां भारतीय होंगे या उन पर भारतीयों ने राज किया होगा।

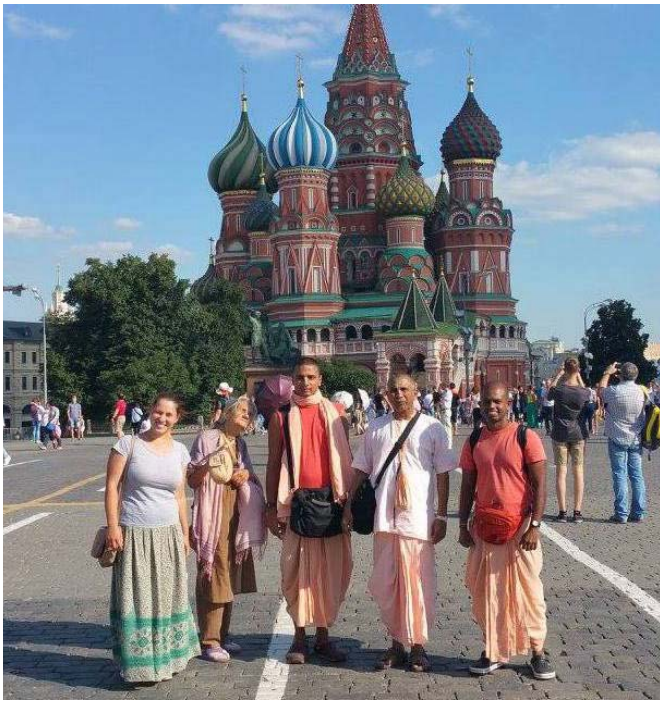

अब ध्यान देने वाली बात यह है कि महाभारत में अर्जुन के उत्तर-कुरु तक जाने का उल्लेख है। कुरु वंश के लोगों की एक शाखा उत्तरी ध्रुव के एक क्षेत्र में रहती थी। उन्हें उत्तर कुरु इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे हिमालय के उत्तर में रहते थे। महाभारत में उत्तर-कुरु की भौगोलिक स्थिति का जो उल्लेख मिलता है वह रूस और उत्तरी ध्रुव से मिलता-जुलता है। अर्जुन के बाद बाद सम्राट ललितादित्य मुक्तापिद और उनके पोते जयदीप के उत्तर कुरु को जीतने का उल्लेख मिलता है। यह विष्णु की मूर्ति शायद वही मूर्ति है जिसे ललितादित्य ने स्त्री राज्य में बनवाया था। चूंकि स्त्री राज्य को उत्तर कुरु के दक्षिण में कहा गया है तो शायद स्ताराया मैना पहले स्त्री राज्य में हो।

उत्खनन में 2007 को यहां एक विष्णु मूर्ति पाई गई । इस स्थान पर 7 वर्षों से उत्खनन कर रहे समूह के डॉ. कोजविनका कहना है कि मूर्ति के साथ ही अब तक किए गए उत्खनन में उन्हें प्राचीन सिक्के, पदक, अंगूठियां और शस्त्र भी मिले हैं। मौजूदा रूस की जगह पहले ग्रैंड डची ऑफ मॉस्को का गठन हुआ। आमतौर से यह माना जाता है कि ईसाई धर्म करीब 1,000 वर्ष पहले रूस के मौजूदा इलाके में फैला। यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी के प्रख्यात विद्वान डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार रूसी भाषा के करीब 2,000 शब्द संस्कृत मूल के हैं। यूक्रेन की राजधानी कीव से भी पहले का यह गांव 1,700 साल पहले आबाद था। अब तक कीव को रूस के सभी शहरों की जन्मस्थली माना जाता रहा है, लेकिन अब यह अवधारणा बदल गई है।

दक्षिण अफ्रीका में आदिदेव भगवान शिव

सनातन संस्कृति में आदिदेव भगवान शिव सर्वत्र विद्यमान हैं। इसीलिए विश्व मे किसी न किसी रूप में उनके विग्रहों अथवा शिवलिंग की उपस्थिति है ही। भगवान शिव कहां नहीं हैं ? कहते हैं कण-कण में हैं शिव, कंकर-कंकर में हैं भगवान शंकर। कैलाश में शिव और काशी में भी शिव और अब अफ्रीका में शिव। दक्षिण अफ्रीका में भी शिव की मूर्ति का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि आज से 6 हजार वर्ष पूर्व अफ्रीकी लोग भी हिंदू धर्म का पालन करते थे।

दक्षिण अफ्रीका के सुद्वारा नामक एक गुफा में पुरातत्वविदों को महादेव की 6 हजार वर्ष पुरानी शिवलिंग की मूर्ति मिली जिसे कठोर ग्रेनाइट पत्थर से बनाया गया है। इस शिवलिंग को खोजने वाले पुरातत्ववेत्ता हैरान हैं कि यह शिवलिंग यहां अभी तक सुरक्षित कैसे रहा। हाल ही में दुनिया की सबसे ऊंची शिवशक्ति की प्रतिमा का अनावरण दक्षिण अफ्रीका में किया गया। इस प्रतिमा में भगवान शिव और उनकी शक्ति अर्धांगिनी पार्वती भी हैं। बेनोनी शहर के एकटोनविले में यह प्रतिमा स्थापित की गई। हिन्दुओं के आराध्य शिव की प्रतिमा में आधी आकृति शिव और आधी आकृति मां शक्ति की है। 10 कलाकारों ने 10 महीने की कड़ी मेहनत के बाद इस प्रतिमा को तैयार किया है। ये कलाकार भारत से आए थे। इस 20 मीटर ऊंची प्रतिमा को बनाने में 90 टन के करीब स्टील का इस्तेमाल हुआ है।

अमेरिका में सनातन की जड़ें

सेंट्रल अमेरिका के मोस्कुइटीए में शोधकर्ता चार्ल्स लिन्द्बेर्ग ने एक ऐसी जगह की खोज की है जिसका नाम उन्होंने ला स्यूदाद ब्लैंका दिया है जिसका स्पेनिश में मतलब व्हाइट सिटी होता है, जहां के स्थानीय लोग बंदरों की मूर्तियों की पूजा करते हैं। चार्ल्स का मानना है कि यह वही खो चुकी जगह है जहां कभी पवन पुत्र हनुमान जी का साम्राज्य हुआ करता था। एक अमेरिकन एडवेंचरर ने लिम्बर्ग की खोज के आधार पर गुम हो चुके 'Lost City Of Monkey God' की तलाश में निकले। 1940 में उन्हें इसमें सफलता भी मिली पर उसके बारे में मीडिया को बताने से एक दिन पहले ही एक कार दुर्घटना में उनकी मौत हो गई और यह राज एक राज ही बनकर रह गया। अमेरिका की प्राचीन माया सभ्यता ग्वाटेमाला, मैक्सिको, पेरू, होंडुरास तथा यूकाटन प्रायद्वीप में स्थापित थी। यह एक कृषि पर आधारित सभ्यता थी। 250 ईस्वी से 900 ईस्वी के बीच माया सभ्यता अपने चरम पर थी। इस सभ्यता में खगोल शास्त्र, गणित और कालचक्र को काफी महत्व दिया जाता था। मैक्सिको इस सभ्यता का गढ़ था। आज भी यहां इस सभ्यता के अनुयायी रहते हैं। यूं तो इस इलाके में ईसा से 10 हजार साल पहले से बसावट शुरू होने के प्रमाण मिले हैं और 1800 साल ईसा पूर्व से प्रशांत महासागर के तटीय इलाक़ों में गांव भी बसने शुरू हो चुके थे। लेकिन कुछ पुरातत्ववेत्ताओं का मानना है कि ईसा से कोई एक हजार साल पहले माया सभ्यता के लोगों ने आनुष्ठानिक इमारतें बनाना शुरू कर दिया था और 600 साल ईसा पूर्व तक बहुत से परिसर बना लिए थे। सन् 250 से 900 के बीच विशाल स्तर पर भवन निर्माण कार्य हुआ, शहर बसे। उनकी सबसे उल्लेखनीय इमारतें पिरामिड हैं, जो उन्होंने धार्मिक केंद्रों में बनाईं लेकिन फिर सन् 900 के बाद माया सभ्यता के इन नगरों का ह्रास होने लगा और नगर खाली हो गए। अमेरिकन इतिहासकार मानते हैं कि भारतीयो ने ही अमेरिका महाद्वीप पर सबसे पहले बस्तियां बनाई थीं। अमेरिका के रेड इंडियन वहां के आदि निवासी माने जाते हैं और हिन्दू संस्कृति वहां पर आज से हजारों साल पहले पहुंच गई थी। माना जाता है कि यह बसाहट महाभारतकाल में हुई थी।

पद्म भूषण से सम्मानित अमेरिकी वैदिक टीचर डेविड फ्रॉली भारत में पंडित वामदेव शास्त्री के नाम से भी जाने जाते हैं। उनके पास योग और वैदिक विज्ञान में डी-लिट की उपाधि है। वह वेद, हिंदुत्व, योग, आयुर्वेद और वैदिक ज्योतिष पर कई पुस्तके लिख चुके हैं।

वियतनाम

वियतनाम का इतिहास 2,700 वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। वियतनाम का पुराना नाम चम्पा था। चम्पा के लोग और चाम कहलाते थे। वर्तमान समय में चाम लोग वियतनाम और कम्बोडिया के सबसे बड़े अल्पसंख्यक हैं। आरम्भ में चम्पा के लोग और राजा शैव थे लेकिन कुछ सौ साल पहले इस्लाम यहां फैलना शुरु हुआ। अब अधिक चाम लोग मुसलमान हैं पर हिन्दू और बौद्ध चाम भी हैं।

भारतीयों के आगमन से पूर्व यहां के निवासी दो उपशाखाओं में विभक्त थे। हालांकि संपूर्ण वियतनाम पर चीन का राजवंशों का शासन ही अधिक रहा। दूसरी शताब्दी में स्थापित चंपा भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र था। यहां के चम लोगों ने भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता ग्रहण की थी। 1825 में चंपा के महान हिन्दू राज्य का अंत हुआ। श्री भद्रवर्मन् जिसका नाम चीनी इतिहास में फन-हु-ता (380-413 ई.) मिलता है, चंपा के प्रसिद्ध सम्राटों में से एक थे जिन्होंने अपनी विजयों ओर सांस्कृतिक कार्यों से चंपा का गौरव बढ़ाया। किंतु उसके पुत्र गंगाराज ने सिंहासन का त्याग कर अपने जीवन के अंतिम दिन भारत में आकर गंगा के तट पर व्यतीत किए। चम्पा संस्कृति के अवशेष वियतनाम में अभी भी मिलते हैं। इनमें से कई शैव मन्दिर हैं।

वियतनाम पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव : दा नंग के चाम संग्रहालय में गणेश की मूर्ति

चिली, पेरू और बोलीविया

अमेरिकन महाद्वीप के बोलीविया (वर्तमान में पेरू और चिली) में हिन्दुओं ने प्राचीनकाल में अपनी बस्तियां बनाईं और कृषि का भी विकास किया। यहां के प्राचीन मंदिरों के द्वार पर विरोचन, सूर्य द्वार, चन्द्र द्वार, नाग आदि सब कुछ हिन्दू धर्म समान हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की आधिकारिक सेना ने नेटिव अमेरिकन की एक 45वीं मिलिट्री इन्फैंट्री डिवीजन का चिह्न एक पीले रंग का स्वास्तिक था। नाजियों की घटना के बाद इसे हटाकर उन्होंने गरूड़ का चिह्न अपनाया।

फिलीपींस

फिलीपींस में किसी समय भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था, पर 15वीं शताब्दी में मुसलमानों ने आक्रमण कर वहां आधिपत्य जमा लिया। आज भी फिलीपींस में कुछ हिन्दू रीति-रिवाज प्रचलित हैं।

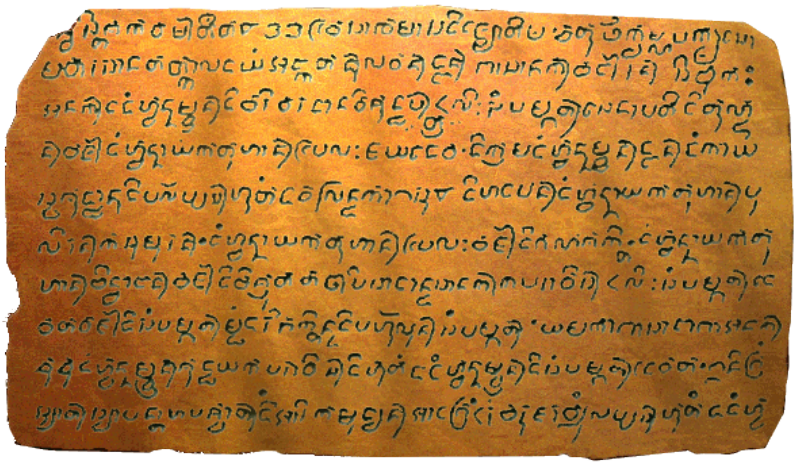

चीन में सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति

मोगाओ गुहाएँ (Tun-huang - Mogao) चीन के उत्तरी भाग में स्थित गांसू प्रान्त में हैं। बौद्ध कला से प्रभावित हिन्दु देवताओं की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। उदाहरण के रूप में, 285 क्रमांक की गुहा में गजमुखी गणेश की स्थापना छठवीं शताब्दी में हुई थी।

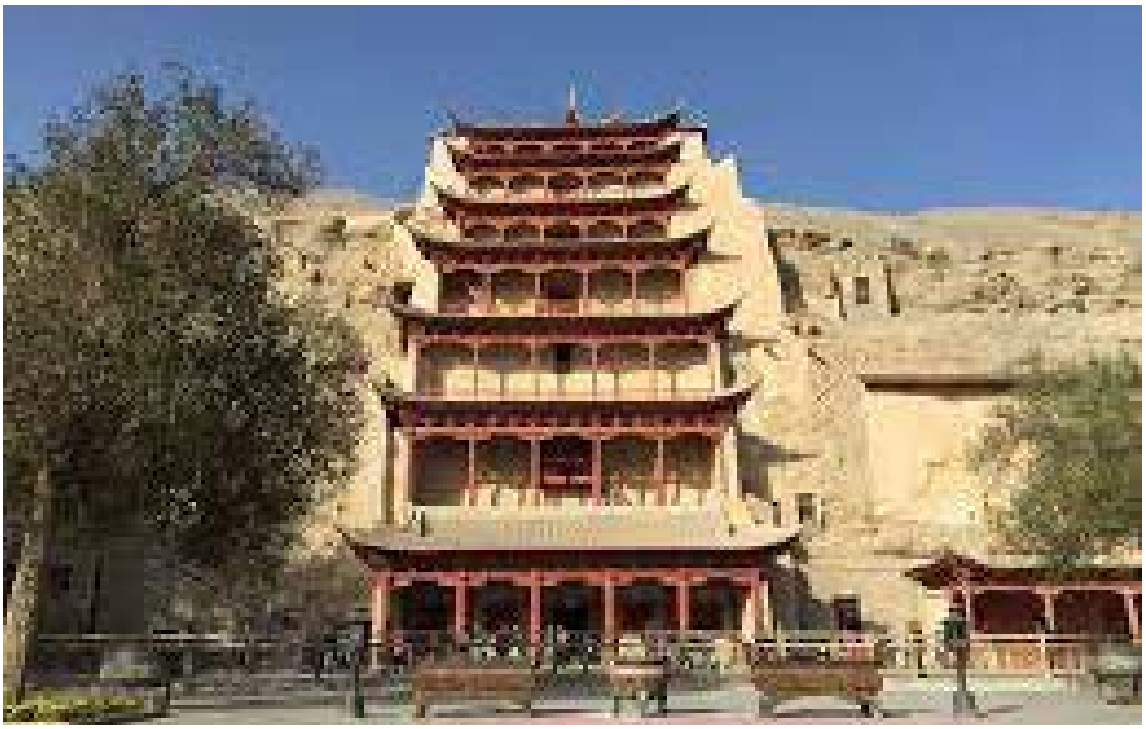

हिन्दू उत्कीर्णन, च्वानजो संग्रहालय। ये चित्र होली के समारोह के लिए नरसिंह कथा वर्णन करता है।

अप्सराओं का चित्र, जो चीन के लुओयांग प्रात के लोंगमेन ग्रोट्टोइस् में है।

चीन के इतिहासकारों के अनुसार चीन के समुद्र से लगे औद्योगिक शहर च्वानजो में और उसके चारों ओर का क्षेत्र कभी हिन्दुओं का तीर्थस्थल था। वहां 1,000 वर्ष पूर्व के निर्मित हिन्दू मंदिरों के खंडहर पाए गए हैं। इसका सबूत चीन के समुद्री संग्रहालय में रखी प्राचीन मूर्तियां हैं। वर्तमान में चीन में कोई हिन्दू मंदिर तो नहीं है, लेकिन 1,000 वर्ष पहले सुंग राजवंश के दौरान दक्षिण चीन के फुच्यान प्रांत में इस तरह के मंदिर थे लेकिन अब सिर्फ खंडहर बचे हैं।

A Golden Kartikeya Statue viewed from the ground before entering the Hindu Batu Caves temple.

मलेशिया

मलेशिया वर्तमान में एक मुस्लिम राष्ट्र है लेकिन पहले ये एक हिन्दू राष्ट्र था। मलय प्रायद्वीप का दक्षिणी भाग मलेशिया देश के नाम से जाना जाता है। इसके उत्तर में थाइलैण्ड, पूर्व में चीन का सागर तथा दक्षिण और पश्चिम में मलाक्का का जलडमरूमध्य है। उत्तर मलेशिया में बुजांग घाटी तथा मरबाक के समुद्री किनारे के पास पुराने समय के अनेक हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर आज भी हैं। मलेशिया अंग्रेजों की गुलामी से 1957 में मुक्त हुआ। वहां पहाड़ी पर बटुकेश्वर का मंदिर है जिसे बातू गुफा मन्दिर कहते हैं। वहां पहुंचने के लिए लगभग 276 सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। पहाड़ी पर कुछ प्राचीन गुफाएं भी हैं। पहाड़ी के पास स्थित एक बड़े मंदिर देखने में हनुमानजी की भी एक भीमकाय मूर्ति लगी है।

Sri Sunderaraja Perumal Temple is a South Indian-style Hindu temple in Malaysia.

सिंगापुर

सिंगापुर एक छोटा सा राष्ट्र है। यह ब्राईदेश दक्षिण में मलय महाद्वीप के दक्षिण सिरे के पास छोटा-सा द्वीप है। इसके उत्तर में मलेशिया का किनारा, पूर्व की ओर चीन का समुद्र और दक्षिण-पश्चिम की ओर मलक्का का जलडमरू- मध्य है। 14वीं सदी तक सिंगापुर टेमासेक नाम से जाना जाता था। सुमात्रा के पॉलेमबग का राजपुत्र संगनीला ने इसे बासाया था तब इसका नाम सिंहपुर था। यहां इस बात के चिन्ह मिलते हैं कि उनका कभी हिन्दू धर्म से भी निकट का संबंध था। 1930 तक उनकी भाषा में संस्कृत भाषा के शब्दों का समावेश है। उनके नाम हिन्दुओं जैसे होते थे और कुछ नाम आज भी अपभ्रंश रूप में हिन्दू नाम ही हैं।

Sri Kamakshi Amman temple in Hamm.

थाइलैंड

थाइलैंड एक बौद्ध राष्ट्र है। यहां पर प्राचीनकाल में हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्म और संस्कृति का एक साथ प्रचलन था लेकिन अब हिन्दू नगण्य है। खैरात के दक्षिण-पूर्व में कंबोडिया की सीमा के पास उत्तर में लगभग 40 कि.मी. की दूरी पर युरिराम प्रांत में प्रसात फ्नाम रंग नामक सुंदर मंदिर है। यह मंदिर आसपास के क्षेत्र से लगभग 340 मी. ऊंचाई पर एक सुप्त ज्वालामुखी के मुख के पास स्थित है। इस मंदिर में शंकर तथा विष्णु की अति सुंदर मूर्ति हैं।

जर्मनी

जर्मनी तो खुद को आर्य मानते ही हैं। लेकिन आश्चर्य की जर्मन में 40 हजार साल पुरानी भगवान नरसिंह की मूर्ति मिली। ये मूर्ति सन 1939 में पाई गई थी। ये मूर्ति इंसानों की तरह दिखने वाले शेर की है। जिसकी लंबाई 29.6 सेंटीमीटर (11.7 सेमी) है। कॉर्बन डेटिंग पद्धति से बताया गया है कि यह लगभग 40 हजार साल पुरानी है। ये मूर्ति होहलंस्टैंन स्टैडल, जर्मन घाटी क्षेत्र में मिली थी। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने के बाद गायब हो गई थी। बाद में उसे खोजा गया। ये मूर्ति खंडित अवस्था में मिली थी और 1997-1998 के दौरान कुछ लोगों ने उसे जोड़ा। सन् 2015 में उसे म्यूजियम में रखा गया।

सनातन से सम्बद्ध यजीदी

इस्लामिक आतंकवाद के चलते यजीदी अब खत्म हो रही मनुष्य की विशिष्ट प्रजाति में शामिल हो चुके हैं। यजीदी धर्म भी विश्व की प्राचीनतम धार्मिक परंपराओं में से एक है। इस कुछ इतिहासकार हिन्दू धर्म का ही एक समाज मानते हैं। यजीदियों की गणना के अनुसार अरब में यह परंपरा 6,763 वर्ष पुरानी है अर्थात ईसा के 4,748 वर्ष पूर्व यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों से पहले से यह परंपरा चली आ रही है। यजीदी मंदिर की इस तस्वीर से यह सिद्ध हो जाएगा कि ये सभी हिन्दू हैं। शोध से पता चलता है कि यजीदियों का यजीद या ईरानी शहर यज्द से कोई लेना-देना नहीं। उनका संबंध फारसी भाषा के 'इजीद' से है जिसके मायने फरिश्ता है। इजीदिस के मायने हैं 'देवता के उपासक' और यजीदी भी खुद को यही कहते हैं। यजीदियों की कई मान्यताएं हिन्दू और ईसाइयत से भी मिलती-जुलती हैं। ईसाइयत के आरंभिक दिनों में मयूर पक्षी को अमरत्व का प्रतीक माना जाता था। बाद में इसे हटा दिया गया। यजीदी का शाब्दिक अर्थ 'ईश्वर के पूजक' होता है। ईश्वर को 'यजदान' कहते हैं। यजीदी अपने ईश्वर को 'यजदान' कहते हैं। यजदान से 7 महान आत्माएं निकलती हैं जिनमें मयूर एंजेल है जिसे मलक ताउस कहा जाता है। मयूर एंजेल को दैवीय इच्छाएं पूरा करने वाला माना जाता है। यजीदी ईश्वर को इतना ऊपर मानते हैं कि उनकी सीधे उपासना नहीं की जाती। उन्हें सृष्टि का रचयिता तो मानते हैं, लेकिन रखवाला नहीं। हिन्दुओं की तरह ही यजीदियों में जल का महत्व है। धार्मिक परंपराओं में जल से अभिषेक किए जाने की परंपरा है। तिलक लगाते हैं और अपने मंदिर में दीपक जलाते हैं। हिन्दू देतता कार्तिकेय जैसे दिखाई देने वाले देवता की पूजा करते हैं। उनके मंदिर और हिन्दुओं के मंदिर समान नजर आते हैं। पुनर्जन्म को मानते हैं। यजीदी अपने ईश्व र की 5 समय प्रार्थना करते हैं। सूर्योदय व सूर्यास्त में सूर्य की ओर मुंह करके प्रार्थना की जाती है। स्वर्ग-नरक की मान्यता भी है। धार्मिक संस्कार कराने वाले विशेषज्ञों की परंपरा है। व्रत, मेले, उत्सव की परंपरा भी है। समाधियां व पूजागृह (मंदिर) भी हैं। इनकी धार्मिक भाषा कुरमांजी है, जो प्राचीन परशियन (ईरान) की शाखा है। पृथ्वी, जल व अग्नि में थूकने को पाप समझते हैं। यजीदी धर्म परिवर्तन नहीं करते। यजीदी के लिए धर्म निकाला सबसे दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता है, क्योंकि ऐसा होने पर उसकी आत्मा को मोक्ष नहीं मिलता।

सनातन हिन्दू संस्कृति का सार तत्व सहेजती एक पुस्तक

संजय राय 'शेरपुरिया'

यज्ञ, हवन, शंख, पद्म, गाय, त्रिशूल, मंदिर, देवस्थान जैसे शब्द सनातन हिन्दू वैदिक संस्कृति में ही हैं। ये केवल शब्द ही नहीं हैं बल्कि इन शब्दों के उच्चारण में ही ऐसा ध्वनित होता है कि जीवन और जीवन का रहस्य क्या है। हमारे देवी, देवता और धार्मिक प्रतीक क्या हैं। कैसे हैं। कितने महत्वपूर्ण हैं। क्यो हैं। स्वाभाविक है कि जिस प्रकार से समाज बदल रहा है और विश्व पटल पर अनेकानेक उपासना पद्धतियां जन्म ले रही हैं, ऐसे परिवेश में किसी को भी यदि हिन्दू संस्कृति को जानना और समझना है तो संजय राय शेरपुरिया की सद्यः प्रकाशित पुस्तक हिन्दू धर्म की धरोहर, भारतीय संस्कृति अवश्य पढ़ना चाहिए। जिस सलीके से इस पुस्तक में सनातन प्रतीकों को माला की मोती के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह अद्भुत है।

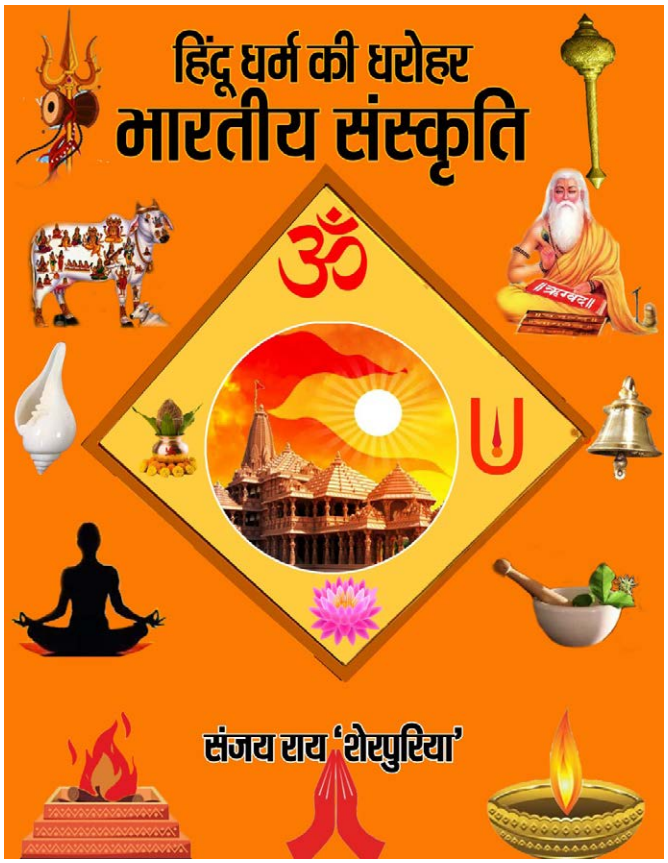

वैसे तो संजय राय शेरपुरिया ने उद्योग, व्यवसाय और समाज सेवा के क्षेत्र में बहुत कार्य किया है और यश भी प्राप्त किया है किंतु इस पुस्तक के माध्यम से संजय राय शेरपुरिया के भीतर का वह संवेदनशील संस्कार युक्त पुरुष सामने आ रहा है जो भारतीय मूल्यों, मान्यताओं और संस्कारों के लिए भी बहुत चिंतित है। शायद यही कारण है कि जब कोरोना जैसी महामारी के समय वह मानव देह के अंतिम संस्कार के लिए परेशान परिवारों को देखते हैं तो उस विपदा में सामने आकर लकड़ी बैंक स्थापित करते हैं जिससे कि मनुष्य के शरीर की अंतिम क्रिया संस्कारयुक्त हो सके। अपनी इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर जब उन्होंने स्वयं अनेक मंदिरों, अनेक प्रकार की पूजा पद्धतियों और हिन्दू रीति रिवाजों को देखा तो उनके भीतर यह विचार आया कि इस विषय को केंद्रित कर एक ऐसी पुस्तक आनी चाहिए जिसको पढ़ कर एक सामान्य व्यक्ति अपने हिन्दू प्रतीकों और संस्कृति को आसानी से समझ सके।

हिन्दू धर्म की धरोहर, भारतीय संस्कृति शीर्षक से प्रकाशित यह पुस्तक आरंभ से अंतिम पन्ने तक अपनी सांस्कृतिक छटा से पाठक को बांधने में सक्षम है। कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़ कर यह जान सकेगा कि वास्तव में वैदिक हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति क्या है और सम्पूर्ण मनावत के लिए किस प्रकार से उपयोगी है। इस पुस्तक का प्रत्येक अध्याय स्वयं में एक मोती है। सभी अध्याय जब क्रम से सामने आते हैं तो वास्तव में एक माला के रूप में परिलक्षित होने लगते हैं। पुस्तक का आवरण अत्यंत आकर्षक है। यह पुस्तक एक संग्रहणीय ग्रंथ है जिसको नई पीढ़ी के लिए बहुत ही उपयोगी माना जायेगा। वह पीढ़ी जो अपनी संस्कृति और संस्कारों से कहीं न कहीं कट चुकी है या कट रही है उसके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी साबित होगी।

डॉ मुन्ना तिवारी
हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय

संस्कृति पर्व

Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME _____

पिता/पति
FATHER/HUSBAND _____

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE _____

_____

_____

पिन कोड
PIN CODE _____

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE _____

ई-मेल
MAIL ID _____

मोबाइल नं०
MOBILE NO. _____

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

श्री रामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

(मारवाड़ी भाषा में)

अनुवादक
अनिता अग्रवाल

भारत संस्कृति न्यास

उद्देश्य

- सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील
- राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत
- प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास
- राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org